क्या फ़िल्मी सितारे चमक-दमक और तड़क-भड़क की दुनिया में रहनेवाली ही ऐसी मूर्तियां हैं कि जिनका हंसना-रोना, बोलना-चालना और जीना तक एक नाटक, है ?
मंटो के इन रेखाचित्रों को विशेषता यही है कि इनके नायक भी हमारी-आपकी तरह साधारण स्त्री-पुरुष है और उन्हींकी तरह जीते हैं।

2 - 0.0
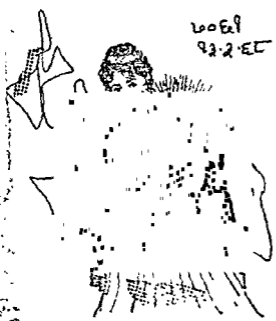
मीना
बाज़ार
समादत्त हसन मंटो

राजकमल पॉकेट बुक्स
में पहली बार, १९६२

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि०
दिल्ली

कलापक्ष
रिफार्मा स्टूडियो
दिल्ली

मुद्रक
सुरेंद्र प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड
दिल्ली

विषय-सूची
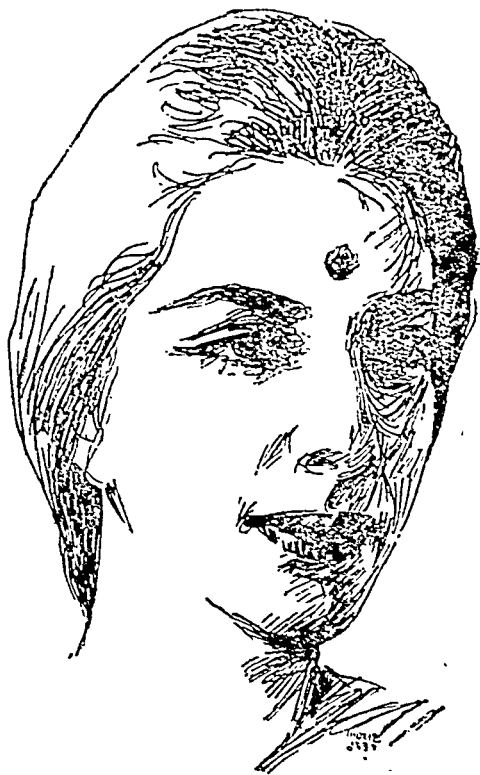
[illegible] मैं फिल्मिस्तान में कर्मचारी था। सुबह जाता, तो रात को आठ बजे के क़रीब लौटता। एक दिन संयोगवश वापसी जल्दी हुई, अर्थात मैं दोपहर के ही क़रीब घर पहुंच गया। भीतर प्रवेश किया, तो सारा वातावरण संगीतपूर्ण प्रतीत हुआ, जैसे कोई साज़ के तार छेड़कर स्वयं छिप गया हो। ड्रेसिंग टेबुल के पास मेरी दो सालियां बैसे तो अपने बाल गूंथ रही थी, मगर उनकी उंगलियां हवा में चल रही थी। होंठ दोनों के फड़फड़ा रहे थे, मगर आवाज़ नहीं निकलती थी। दोनों मिल-जुलकर घबराहट की ऐसी तसवीर पेश कर रही थी, जो अपनी घबराहट छिपाने की ख़ातिर बेमतलब दुपट्टा ओढ़ने की कोशिश कर रही हो। पासवाले कमरे के दरवाज़े का परदा अंदर से दबा हुआ था।

मैं सोफ़े पर बैठ गया। दोनों बहनों ने एक-दूसरे की तरफ़ क़ुसूर-वार निगाहों से देखा। हौले-हौले से खुसर-फुसर की। फिर दोनों ने एक साथ कहा, "भाजी, सलाम!"

"वाल्कुम सलाम!" मैंने ध्यान से उनकी ओर देखा, "क्या बात है?"

मैंने सोचा कि सब मिलकर सिनेमा जा रही है। दोनों ने मेरा सवाल सुनकर फिर खुसर-फुसर की। फिर एकदम खिलखिलाकर हंसी और दूसरे कमरे में भाग गई।

मैंने सोचा कि शायद उन्होंने अपनी किसी सहेली को आमंत्रित किया है, वह आनेवाली है और चूंकि मैं अचानक चला आया हूं, इसलिए इनका प्रोग्राम गड़बड़ हो गया है।

दूसरे कमरे में कुछ देर तक तीनों बहनों में कानाफूसी होती रही। उनकी दबी-दबी हंसी की आवाज़ें भी आती रहीं। इसके बाद में सबसे बड़ी बहन, यानी मेरी श्रीमती, मुझे सुनाने के लिए कहती हुई बाहर

निकली, "मुझे क्या कहती हो, कहना है, तो ख़ुद उनसे कहो।"' सआदत-साहब, आज आप बहुत जल्दी आ गए ?"

मैंने कारण बता दिया कि स्टूडियो में कोई काम नहीं था, इसलिए चला आया। फिर अपनी बीवी से पूछा, "क्या कहना चाहती हैं मेरी सालियां ?"

"ये कहना चाहती हैं कि नर्गिस आ रही है।"

"तो क्या हुआ, आए ! वह क्या पहले कभी नहीं आई ?"

मैं समझा कि वह उस पारसी लड़की की बात कर रही हैं, जिसकी मां ने एक मुसलमान से शादी कर ली थी और हमारे पड़ोस में रहती थी। मगर मेरी बीवी ने कहा, "हाय, वह पहले कब हमारे यहां आई है !"

"तो क्या यह कोई और नर्गिस है ?"

"मैं नर्गिस ऐक्ट्रेस की बात कर रही हूं।"

मैंने आश्चर्य से पूछा, "वह क्या करने आ रही है यहां ?"

मेरी बीवी ने मुझे सारा क़िस्सा सुनाया। घर में टेलीफ़ोन था, जिसका तीनों बहनें अवकाश के क्षणों में बड़ी उदारता से प्रयोग करती थीं। जब अपनी सहेलियों से बातें करते-करते थक जातीं, तो किसी अभिनेत्री का नंबर घुमा देतीं। वह मिल जाती, तो उससे ऊट-पटांग बातें शुरू हो जातीं—हम आपसे प्रभावित हैं···आज ही दिल्ली से आई हैं··· बड़ी मुश्किल से आपका नंबर हासिल किया है···भेंट करने के लिए तड़प रही हैं···ज़रूर हाज़िर होतीं, मगर परदे की पाबंदी है···आप बहुत हसीन हैं···गला बड़ा ही सुरीला है···(हालांकि उन्हें मालूम नहीं होता था कि इसमें अमीरबाई बोलती है या शमशाद !)

आम तौर पर फ़िल्म ऐक्ट्रेसों के नंबर डायरेक्टरी में दर्ज नहीं होते। वे ख़ुद दर्ज नहीं करातीं, ताकि उनके चाहनेवाले बेकार तंग न करें। मगर इन तीनों बहनों ने मेरे दोस्त आग़ा ख़लिश काश्मीरी के ज़रिए क़रीब-क़रीब उन तमाम ऐक्ट्रेसों के पते और फ़ोन नंबर प्राप्त कर लिए थे, जो उन्हें डायरेक्टरी में नहीं मिले थे।

इन टेलीफ़ोनी ख़ुराफ़ात के दौरान जब उन्होंने नर्गिस को बुलाया और उससे बातचीत की, तो वह बहुत पसंद आ गई। इस वार्तालाप में उनको अपनी उम्र की आवाज़ सुनाई दी, अतः कुछ भेंटों और कुछ वार्तालापों ही में वे उससे खुल गईं। मगर अपनी असलियत छिपाए रखी। एक कहती, मैं अफ़रीका की रहनेवाली हूं। वही दूसरी बार यह बताती कि लखनऊ से अपनी ख़ाला के पास आई है। दूसरी यह प्रकट करती कि वह रावलपिंडी की रहनेवाली है और सिर्फ़ इसलिए बंबई आई है कि उसे नर्गिस को एक बार देखना है। तीसरी, यानी मेरी बीवी, कभी गुजरातिन बन जाती, कभी पारसन।

टेलीफ़ोन पर कई बार नर्गिस ने झुंझलाकर पूछा कि तुम लोग असल में कौन हो? क्यों अपना नाम-पता छिपाती हो? साफ़-साफ़ क्यों नहीं बताती कि यह रोज़-रोज़ की टन-टन ख़त्म हो?

साफ़ है कि नर्गिस इनसे प्रभावित थी। उसे निःसंदेह अपने सैकड़ों चाहनेवालों के फ़ोन आते होंगे, मगर ये तीन लड़कियां उनसे कुछ भिन्न थीं। इसलिए वह सख़्त बेचैन थी कि उनकी असलियत जाने और उनसे मिले-जुले, संपर्क स्थापित करे। अतः जब भी उसे मालूम होता कि इन रहस्यमय लड़कियों ने उसे बुलाया है, तो वह सौ काम छोड़कर आती और बहुत देर तक टेलीफ़ोन के साथ चिपकी रहती।

एक दिन नर्गिस के अनवरत आग्रह पर यह निश्चित हो गया कि उनकी भेंट होके रहेगी। मेरी श्रीमती ने अपने घर का पता अच्छी तरह समझा दिया और कहा कि यदि फिर भी मकान मिलने में कठिनाई हो, तो बाईकुला के पुल के पास किसी होटल से टेलीफ़ोन कर दिया जाए, वे सब वहां पहुंच जाएंगी।

जब मैंने घर में प्रवेश किया, बाईकुला पुल के एक स्टोर से नर्गिस ने फ़ोन किया था कि वह पहुंच चुकी है, मगर मकान नहीं मिल रहा। अतः तीनों भागम-भाग की हालत में तैयार हो रही थीं कि मैं एक अभिशाप के रूप में पहुंच गया।

सोरी दी का ख़्याल था कि मैं नाराज़ होऊंगा। बड़ी, यानी मेरी

बीवी केवल बौखलाई हुई थी कि यह-सब क्या हुआ है ? मैंने नाराज़ होने की कोशिश की, मगर मुझे इसके लिए कोई यथेष्ट और उचित कारण न मिला। सारा किस्सा काफ़ी दिलचस्प और बेहद मासूम था। यदि 'कान-मिचौनी' की यह हरकत केवल मेरी श्रीमती द्वारा की गई होती, तो बिलकुल जुदा बात थी। पूरा घर ही उनका था। एक साली आधी घरवाली होती है और यहां दो सालियां थी ! मैं जब उठा, तो दूसरे कमरे में खुश होने और तालियां बजाने की आवाज़ें बुलंद हुईं।

बाईकुला के चौक में जद्दनबाई की लंबी-चौड़ी मोटर खड़ी थी। मैंने सलाम किया, तो उन्होंने हस्ब-मामूल बड़ी ऊंची आवाज में उसका उत्तर दिया और पूछा, "कहो, मंटो कैसे हो ?"

मैंने कहा, "अल्लाह का शुक्र है ! कहिए, आप यहाँ क्या कर रही हैं ?"

जद्दनबाई ने पिछली सीट पर बैठी हुई नर्गिस की ओर देखा, "कुछ नहीं, बेबी को अपनी सहेलियों से मिलना था, मगर उनका मकान नहीं मिल रहा।"

मैंने मुस्कराकर कहा, "चलिए, मैं आपको ले चलूं।"

नर्गिस यह सुनकर खिड़की के पास आ गई, "आपको उनका मकान मालूम है ?"

मैंने और अधिक मुस्कराकर कहा, "अपना मकान कौन भूल सकता है ?"

जद्दनबाई के गले ने विचित्र-सी आवाज निकाली। पान के बीड़े को दूसरे कल्ले में बदलते हुए कहा, "यह तुम क्या कहानीकारी कर रहे हो ?"

मैं दरवाज़ा खोलकर जद्दनबाई के पास गया, "बीवी ! यह अफ़साना-निगारी मेरी नहीं है, मेरी बीवी और उसकी बहनों की है !" इसके बाद मैंने संक्षेप में सारी घटनाओं का उल्लेख कर दिया। नर्गिस बड़ी दिल-
ती रही। जद्दनबाई को बड़ी कोफ़्त, बड़ी परेशानी हुई।

"ये कैसी लड़कियां हैं! पहले ही दिन कह दिया होता कि हम मंटो के घर से बोल रही हैं—खुदा की क़सम! मैं फ़ौरन बेबी को भेज देती। भई, हद हो गई है, इतने दिन परेशान किया!—खुदा की क़सम, बेचारी बेबी को इतनी उलझन होती थी कि मैं तुमसे क्या कहूं! जब टेलीफ़ोन आता, तो भागी-भागी जाती। मैं बार-बार पूछती, यह कौन है, जिससे इतनी देर मीठी-मीठी बातें होती हैं? मुझसे कहती, जानती नहीं कौन हैं, मगर हैं बड़ी अच्छी। दो-एक बार मैंने भी टेलीफ़ोन उठाया। बातचीत बड़ी सुंदर थी। किसी अच्छे घर की मालूम होती थी। मगर, माफ करना, कमबख्त अपना नाम-पता साफ बताती ही नहीं थी। आज बेबी आई और खुशी से दीवानी हो रही थी। कहने लगी, 'बीबी! उन्होंने बुलाया है! अपना एड्रेस दे दिया है!' मैंने कहा, 'पागल हुई हो। हटो, जाने कौन हैं, कौन नहीं है!' पर इसने मेरी एक न मानी। बस, पीछे पड़ गई। इसलिए मुझे साथ आना ही पड़ा।—खुदा की क़सम! अगर यह मालूम होता कि ये आफतें तुम्हारे घर की हैं…"

मैंने बात काटकर कहा, "तो साथ में आप नाज़िल न होतीं!"

जद्दनबाई के कल्ले में दबे हुए पान में थोड़ी मुस्कराहट पैदा हुई, "इसकी ज़रूरत ही क्या थी, मैं क्या तुम्हें जानती नहीं?"

स्वर्गीय जद्दनबाई को उर्दू साहित्य से बड़ा प्रेम था, मेरे लेख, कहानियां आदि बड़े चाव से पढ़ती और पसंद करती थीं। उन दिनों मेरा एक लेख 'साक़ी' में प्रकाशित हुआ था,—संभवतः 'प्रगतिशील कब्रिस्तान'। मालूम नहीं उनका मन क्यों इस ओर चला गया। बोलीं, "खुदा की क़सम, मंटो! बहुत सुंदर लिखते हो! ज़ालिम, क्या व्यंग्य किया है इस लेख में!…क्यों, बेबी, उस दिन क्या हाल हुआ था मेरा यह लेख पढ़कर?"

मगर नर्गिस अपनी नई सहेलियों के बारे में सोच रही थी। व्याकुलतापूर्ण स्वर में उसने अपनी मां से कहा, "चलो, बीबी!"

जद्दनबाई ने मुझसे कहा, "चलो, भाई!"

घर पास ही था, मोटर स्टार्ट हुई और हम पहुंच गए। ऊपर वाल-

कनी से तीनों ने हमें देखा। छोटी दोनों का ख़ुशी के मारे बुरा हाल हो रहा था। ख़ुदा जाने, आपस में क्या खुसर-फुसर कर रही थीं ! जब हम ऊपर पहुंचे, तो विचित्र रीति से सबकी भेंट हुई। नर्गिस अपनी हम-उम्र लड़कियों के साथ दूसरे कमरे में चली गई और मैं, मेरी बीवी और जद्दनबाई वहीं बैठ गए।

बहुत देर तक विभिन्न दृष्टिकोणों से 'कान-मिचौनी' के सिलसिले की समालोचना की गई। मेरी बीवी की बौखलाहट जब किसी क़दर कम हुई, तो उसने आतिथ्य-सत्कार का कर्तव्य निभाना आरंभ कर दिया।

मैं और जद्दनबाई फ़िल्म उद्योग की समस्याओं पर विचार-विमर्श करते रहे। पान खाने के मामले में वह बड़ी ख़ुशज़ौक़ थीं। हर समय अपनी पानदानी साथ रखती थीं। बड़ी देर के बाद मौक़ा मिला था। इसलिए मैंने उस पर ख़ूब हाथ साफ़ किया।

नर्गिस को मैंने काफ़ी दिनों के बाद देखा था। दस-ग्यारह बरस की बच्ची थी, जब मैंने एक-दो फ़िल्मों की नुमाइश में उसे अपनी मां की उंगली के साथ लिपटी देखा था। चुंधियाई हुई आंखें, आकर्षणहीन-सा लंबा चेहरा, सूखी-सूखी टांगें, ऐसा मालूम होता था कि सोकर उठी है या सोनेवाली है। मगर अब वह एक जवान लड़की थी। उम्र ने उसके खाली स्थान भर दिए थे, मगर आंखें वैसी-की-वैसी थीं—छोटी और स्वप्नमयी, बीमार-बीमार—मैंने सोचा, इस खयाल से उसका नाम नर्गिस उपयुक्त और सही है !

तबीयत में बेहद ही मासूम खलंडरापन था। बार-बार अपनी नाक पोंछती थी, जैसे निरंतर ज़ुक़ाम से पीड़ित हो। ('बरसात' फ़िल्म में यह बात इसकी अदा के तौर पर पेश की गई है !) किंतु नर्गिस के उदास-उदास चेहरे से यह स्पष्ट था कि वह अपने अंदर कलाकारी का जौहर रखती है। होंठों को किसी क़दर भींचकर बात करने और मुस्कराने में वैसे एक बनावट थी, मगर साफ़ पता चलता था कि यह बनावट शृंगार का रूप धारण करके रहेगी। आखिर कलाकारी की बुनियादें बनावट ही पर तो निर्मित होती हैं !

एक बात जो विशेष रूप से मैंने महसूस की, वह यह है कि नर्गिस को इस बात का अहसास था कि वह एक दिन बहुत बड़ी स्टार बननेवाली है, स्टार बनकर फिल्मी दुनिया पर चमकनेवाली है। मगर यह दिन निकट लाने और उसे देखकर प्रसन्न होने की उसे कोई जल्दी नहीं थी। इसके अतिरिक्त अपने बचपन की नन्ही-मुन्नी खुशिया घसीटकर वह बड़ी-बड़ी, विहगम खुशियो के दायरे में नहीं ले जाना चाहती थी।

तीनो हम उम्र लड़कियां दूसरे कमरे में जो बातें कर रही थी, उनका दायरा घर की चारदीवारी तक महदूद था। फिल्म-स्टूडियो में क्या होता है, रोमास क्या बला है, इससे उन्हे कोई दिलचस्पी नही थी। नर्गिस भूल गई थी कि वह फिल्म-स्टार है, परदे पर जिसकी अदाए बिकती है। और उसकी सहेलिया भी यह भूल गई थी कि नर्गिस स्क्रीन पर बुरी हरकतें करनेवाली अभिनेत्री है।

मेरी बीवी, जो उम्र में नर्गिस से बड़ी थी, अब उसके आगमन पर बिलकुल बदल गई थी। उसका व्यवहार उससे ऐसा ही था, जैसा अपनी छोटी बहनों से था। पहले उसको नर्गिस से इसलिए दिलचस्पी थी कि वह फिल्म ऐक्ट्रेस है, परदे पर बडी कुशलता से नित्य नए-नए मर्दो से प्रेम करती है, हसती है, ठडी आहें भरती है, कहकहे लगाती है। अब उसे खयाल था कि वह खट्टी चीजें न खाए, ज्यादा ठडा पानी न पिए, अधिक फिल्मो में काम न करे, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखे। अब उसकी दृष्टि में नर्गिस का फिल्मो में काम करना कोई लज्जास्पद बात न थी।

इधर-उधर की बातो के बाद नर्गिस से माग की गई कि वह गाना सुनाए। इस पर जद्दनबाई ने कहा, "मैंने इसको सगीत की शिक्षा नही दी। मोहनबाबू इसके खिलाफ थे और सच पूछिए, तो मुझे भी पसद नही था। थोड़ी-बहुत टूटा-टा कर लेती है।" इसके बाद वह अपनी बेटी से मुखातिब हुई, "सुना दो, बेबी! जैसा भी आता है, सुना दो!"

नर्गिस ने बड़ी ही अबोध रीति से गाना आरभ कर दिया—परले

कनी से तीनों ने हमें देखा। छोटी दोनों का खुशी के मारे बुरा हाल हो रहा था। खुदा जाने, आपस में क्या खुसर-फुसर कर रही थीं! जब हम ऊपर पहुंचे, तो विचित्र रीति से सबकी भेंट हुई। नर्गिस अपनी हम-उम्र लड़कियों के साथ दूसरे कमरे में चली गई और मैं, मेरी बीवी और जद्दनबाई वहीं बैठ गए।

बहुत देर तक विभिन्न दृष्टिकोणों से 'कान-मिचौनी' के सिलसिले की समालोचना की गई। मेरी बीवी की बौखलाहट जब किसी क़दर कम हुई, तो उसने आतिथ्य-सत्कार का कर्तव्य निभाना आरंभ कर दिया।

मैं और जद्दनबाई फ़िल्म उद्योग की समस्याओं पर विचार-विमर्श करते रहे। पान खाने के मामले में वह बड़ी खुशज़ौक़ थीं। हर समय अपनी पानदानी साथ रखती थीं। बड़ी देर के बाद मौक़ा मिला था। इसलिए मैंने उस पर खूब हाथ साफ़ किया।

नर्गिस को मैंने काफ़ी दिनों के बाद देखा था। दस-ग्यारह बरस की बच्ची थी, जब मैंने एक-दो फ़िल्मों की नुमाइश में उसे अपनी मां की उंगली के साथ लिपटी देखा था। चुंधियाई हुई आंखें, आकर्षणहीन-सा लंबा चेहरा, सूखी-सूखी टांगें, ऐसा मालूम होता था कि सोकर उठी है या सोनेवाली है। मगर अब वह एक जवान लड़की थी। उम्र ने उसके खाली स्थान भर दिए थे, मगर आंखें वैसी-की-वैसी थीं—छोटी और स्वप्नमयी, बीमार-बीमार—मैंने सोचा, इस खयाल से उसका नाम नर्गिस उपयुक्त और सही है!

तबीयत में बेहद ही मासूम खलंडरापन था। बार-बार अपनी नाक पोंछती थी, जैसे निरंतर जुक़ाम से पीड़ित हो। ('बरसात' फ़िल्म में यह बात इसकी अदा के तौर पर पेश की गई है!) किंतु नर्गिस के उदास-उदास चेहरे से यह स्पष्ट था कि वह अपने अंदर कलाकारी का जौहर रखती है। होंठों को किसी क़दर भींचकर बात करने और मुस्कराने में वैसे एक बनावट थी, मगर साफ़ पता चलता था कि यह बनावट शृंगार का रूप धारण करके रहेगी। आखिर कलाकारी की बुनियादें बनावट ही पर तो निर्मित होती हैं!

एक बात जो विशेष रूप से मैंने महसूस की, वह यह है कि नर्गिस को इस बात का अहसास था कि वह एक दिन बहुत बड़ी स्टार बननेवाली है, स्टार बनकर फिल्मी दुनिया पर चमकनेवाली है। मगर यह दिन निकट लाने और उसे देखकर प्रसन्न होने की उसे कोई जल्दी नहीं थी। इसके अतिरिक्त अपने बचपन की नन्ही-मुन्नी खुशियां घसीटकर वह बड़ी-बड़ी, विहगम खुशियों के दायरे में नहीं ले जाना चाहती थी।

तीनों हम उम्र लड़कियां दूसरे कमरे में जो बातें कर रही थी, उनका दायरा घर की चारदीवारी तक महदूद था। फिल्म-स्टूडियो में क्या होता है, रोमांस क्या बला है, इससे उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी। नर्गिस भूल गई थी कि वह फिल्म-स्टार है, परदे पर जिसकी अदाएं बिकती हैं। और उसकी सहेलियां भी यह भूल गई थी कि नर्गिस स्क्रीन पर बुरी हरकतें करनेवाली अभिनेत्री है।

मेरी बीवी, जो उम्र में नर्गिस से बड़ी थी, अब उसके आगमन पर बिलकुल बदल गई थी। उसका व्यवहार उससे ऐसा ही था, जैसा अपनी छोटी बहनों से था। पहले उसको नर्गिस में इसलिए दिलचस्पी थी कि वह फिल्म ऐक्ट्रेस है, परदे पर बड़ी कुशलता से नित्य नए-नए मर्दों से प्रेम करती है, हंसती है, ठंडी आहें भरती है, कहकहे लगाती है। अब उसे खयाल था कि वह खट्टी चीजें न खाए, ज्यादा ठंडा पानी न पिए, अधिक फिल्मों में काम न करे, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखे। अब उसकी दृष्टि में नर्गिस का फिल्मों में काम करना कोई लज्जास्पद बात न थी।

इधर-उधर की बातों के बाद नर्गिस से मांग की गई कि वह गाना सुनाए। इस पर जद्दनबाई ने कहा, "मैंने इसको संगीत की शिक्षा नहीं दी। मोहनबाबू इसके खिलाफ थे और सच पूछिए, तो मुझे भी पसंद नहीं था। थोड़ी-बहुत टूटा कर लेती है।" इसके बाद वह अपनी बेटी से मुखातिब हुईं, "सुना दो, बेबी! जैसा भी आता है, सुना दो।"

नर्गिस ने बड़ी ही अबोध रीति से गाना आरंभ कर दिया—परले

दरजे की कमजोर आवाज़ में रस, न लोच। मेरी छोटी साली उससे कई गुना अच्छा गाती थी। मगर मांग की गई थी नर्गिस से और वह भी आग्रहपूर्वक, इसलिए दो-तीन मिनट तक उसका गाना सहन करना ह पड़ा। जब उसने समाप्त किया, तो सबने प्रशंसा की। थोड़ी देर के बा जद्दनबाई ने छुट्टी चाही। लड़कियां नर्गिस से गले मिलीं। दुबारा मिल के वायदे हुए। कुछ खुसर-फुसर भी हुई और हमारे अतिथि चले गए

नर्गिस से यह मेरी पहली मुलाकात थी। लड़कियां टेलीफ़ोन करत थी और नर्गिस अकेली मोटर में चली आती। इस आवागमन में उसवे अभिनेत्री होने का कम्प्लेक्स लगभग मिट गया। वह लड़कियों से औ लड़कियां उससे यों मिलती, जैसे वह उनकी बहुत पुरानी सहेली है, य कोई रिश्तेदार है। लेकिन जब वह चली जाती, तो कभी-कभी तीनं बहनें आश्चर्य प्रकट करती—ख़ुदा की कसम! अजीब बात है कि नर्गिर बिलकुल एक्ट्रेस मालूम नहीं होती!

इस दौरान तीनों बहनों ने उसकी एक ताज़ा फ़िल्म देखी, जिसमें प्रकट है कि वह अपने हीरो की प्रेमिका थी, जिससे वह प्यार और मुहब्बत की बातें करती थी और उसे विचित्र निगाहों से देखती थी, उसके साथ लगकर खड़ी होती थी, उसका हाथ दबाती थी। मेरी बीवी कहती, "कम बख़्त उसके फ़िराक़ में कैसी लंबी-लंबी आहें भर रही थी, जैसे सचमुच उसके इश्क़ में गिरफ्तार है!" और उसकी दो छोटी बहनें अपने कुंवारे एक्टिंग से अनभिज्ञ दिलों में सोचती, "और वह कल हमसे पूछ रही थी कि गुड़ की भेली कैसे बनती है!"

नर्गिस की कलाकारी के बारे में मेरा विचार बिलकुल दूसरा था। निश्चित रूप से भावनाओं एवं अनुभूतियों का अभिनय वह सही तौर पर नहीं करती थी। मुहब्बत की नब्ज़ किस तरह चलती है, यह अनाड़ी उंगलियां कैसे अनुभव कर सकती हैं? इश्क़ की दौड़ में थककर हांफना और स्कूल की दौड़ में थककर सांस का फूल जाना, दो अलग चीज़ें हैं। मेरा विचार है कि स्वयं नर्गिस भी इसके अंतर और भेद से परिचित नहीं थी। नर्गिस के शुरू-शुरू के फ़िल्मों में जानकार निगाहें फ़ौरन

मालूम कर सकती हैं कि उसकी कलाकारी 'फरेबकारी' से मुक्त थी।

कलाकारी का यह कमाल है कि कलाकारी में बनावट की मिलावट मालूम न हो। लेकिन नर्गिस की कलाकारी की बुनियादें चूंकि अनुभव पर आधारित नहीं थी, अतः उसमें यह विशेषता नहीं थी। यह केवल उसकी लगन थी कि वह भावनाओं और अनुभूतियों का सफल अभिनय न कर सकने के बावजूद अपना काम निभा जाती थी। उम्र और अनुभव के साथ-साथ अब वह बहुत पुख्तगी अख्तियार कर चुकी है। अब उसको इश्क की दौड़ और स्कूल की एक मील की दौड़ में थककर हांफने का रहस्य और भेद मालूम है। अब तो उसको सांस के हलके-से-हलके उतार-चढ़ाव की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि भी ज्ञात है।

यह बहुत अच्छा हुआ कि उसने कलाकारी की मंजिलें धीरे-धीरे तय की। अगर वह एक ही छलांग में आखिरी मंजिल पर पहुंच जाती, तो फिल्म देखनेवाले समझदार लोगों और दर्शकों के जज्बात को बहुत ही गंवार किस्म का दुख पहुंचता। और यदि लड़कपन की अवस्था में परदे से अलग, व्यक्तिगत जीवन में भी वह अभिनेत्री बनी रहती और अपनी आयु को मक्कार और चालाक बजाजों के गज से नापकर दिखाती, तो मैं इस आघात को ताब न लाकर तिस्सदेह मर गया होता!

नर्गिस ने ऐसे घराने में जन्म लिया था कि उसको येन-केन प्रकारेण अभिनेत्री बनना ही था। जद्दनबाई के गले में बुढ़ापे का घुंघरू बोल रहा था। उनके दो पुत्र थे, किंतु उनका सारा ध्यान और सारा प्रेम नर्गिस पर ही केंद्रित था। उसकी शक्ल व सूरत साधारण थी। गले में सुर की उत्पत्ति की भी कोई संभावना न थी, परंतु जद्दनबाई जानती थीं कि सुर उत्पन्न किया जा सकता है और साधारण शक्ल व सूरत में भी आंतरिक प्रकाश से, जिसे जौहर कहते हैं, आकर्षण और दिलकशी पैदा की जा सकती है। यही वजह है कि उन्होंने जान मारकर उसकी

परवरिश की और काल के अत्यंत कोमल और छोटे-छोटे कण जोड़कर अपने सुनहरे स्वप्न को साकार किया।

जद्दनबाई थीं। उनकी मां थीं। उनका मोहनबाबू था। बेबी नर्गिस थी। उसके दो भाई थे। इतना बड़ा कुनबा था, जिसका बोझ सिर्फ़ जद्दनबाई के कंधों पर था। मोहनबाबू एक बड़े रईसजादे थे। जद्दनबाई के गले के स्वरों और कोकिल-कंठ के जादू में ऐसे उलझे कि दीन-दुनिया का होश न रहा। ख़ूबसूरत थे। शिक्षित थे। स्वस्थ थे। लेकिन ये सब दौलतें जद्दनबाई के दर पर भिखारी बन गईं। जद्दनबाई का उस ज़माने में डंका बजता था। बड़े-बड़े ख़ानदानी नवाब और राजे उनके मुजरों पर सोने और चांदी की बारिश करते थे। मगर जब बारिशें थम जातीं और आकाश निखर जाता, तो जद्दनबाई अपने मोहन को सीने से लगा लेतीं कि उसी मोहन के पास उनका दिल था!

मोहनबाबू अपने अंतिम समय तक जद्दनबाई के साथ थे। वह उनका बड़ा सम्मान और आदर करती थीं, इसलिए कि वह राजाओं और नवाबों की दौलत में ग़रीबों के ख़ून की बू सूंघ चुकी थीं। उनको अच्छी तरह मालूम था कि उनके इश्क़ की धारा एक ही दिशा को नहीं बहती। वह मोहनबाबू से प्रेम करती थीं कि वह उनके बच्चों का बाप था।

विचारों के बहाव में जाने किधर बह गया...नर्गिस को, बहरहाल, ऐक्ट्रेस बनना था, चुनांचे वह बन गई। उसके उन्नति के शिखर पर पहुंचने का रहस्य—जहां तक मैं समझता हूं—उसकी ईमानदारी है, उसका साहस है, जो क़दम-ब-क़दम, मंज़िल-ब-मंज़िल उसके साथ रहा है।

एक बात जो इन भेंटों में विशेष रूप से मैंने महसूस की, वह यह है कि नर्गिस को इस बात का एहसास था कि जिन लड़कियों से वह मिलती है, वे किसी अन्य प्रकार के पानी और फूल, माटी और वायु से बनी हैं। वह उनके पास आती थी और घंटों उनसे मासूम ढंग की बातें करती थी। उसको शायद यह भय था कि वे उसका निमंत्रण ठुकरा

देंगी। वे कहेंगी कि वे उसके यहां कैसे जा सकती हैं ? मैं एक दिन घर पर मौजूद था कि उसने सरसरी तौर पर अपनी सहेलियों से कहा, "अब कभी तुम भी हमारे घर आओ।"

यह सुनकर तीनों बहनों ने बड़े ही भौंडेपन से एक-दूसरे की ओर देखा। वे शायद यह सोच रही थीं कि हम नर्गिस की यह दावत कैसे स्वीकार कर सकती हैं ? परंतु मेरी बीवी चूंकि मेरे विचारों से परिचित थी, इसलिए एक दिन नर्गिस के लगातार आग्रह पर उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया गया और मुझे बताए बिना तीनों उसके घर चली गईं।

नर्गिस ने अपनी कार भेज दी थी। जब वे बंबई के ख़ूबसूरत स्थान मेरीन ड्राइव के उस फ़्लैट में पहुंचीं, जहां नर्गिस रहती थी, तो उन्होंने अनुभव किया कि उनके आगमन पर विशेष प्रबंध किया गया है। मोहन-बाबू और उनके दो नौजवान लड़कों को आगाह कर दिया गया था कि वे घर में प्रवेश न करें, क्योंकि नर्गिस की सहेलियां आ रही हैं। पुरुष नौकरों को भी उस कमरे में आने की अनुमति नहीं था, जहां इन 'सम्मानित' मेहमानों को ठहराया गया था। स्वयं जद्दनबाई थोड़ी देर के लिए औपचारिक तौर पर उनके पास बैठी और फिर अंदर चली गईं। वह उनकी अबोध गुफ़्तगू में हायल नहीं होना चाहती थी।

तीनों बहनों का कहना है कि नर्गिस उनके आगमन पर फूली न समाती थी। वह इतनी ज़्यादा ख़ुश थी कि बार-बार घबरा-सी जाती थी। अपनी सहेलियों के सत्कार में उसने बड़े जोश और उत्साह का प्रदर्शन किया। पास ही पोरज़ेन डेरी थी, जिसके मिल्क शेक मशहूर थे। गाड़ी में जाकर नर्गिस स्वयं यह सामान जग में तैयार कराके लाई, क्योंकि वह यह काम नौकर के सुपुर्द नहीं करना चाहती थी, इसलिए कि इस बहाने से नौकर के भीतर आने की संभावना को बल मिलता था।

आतिथ्य-सत्कार के इस जोश व ख़रोश में नर्गिस ने अपने नए सेट का गिलास तोड़ दिया। मेहमानों ने अफ़सोस ज़ाहिर किया, तो नर्गिस ने कहा, "कोई बात नहीं, बीबी गुस्सा होगी, मगर डैडी उनको चुप करा देंगे और मामला ठीक हो जाएगा।"

मोहनबाबू को उससे और उसको मोहनबाबू से मुहब्बत थी।

मिल्क शेक पिलाने के बाद नर्गिस ने मेहमानों को अपना एलबम दिखाया, जिसमें उसकी विभिन्न फ़िल्मों के 'स्टिल' थे। उस नर्गिस में, जो उनको ये फ़ोटो दिखा रही थी और उस नर्गिस में, जो इन तसवीरों में मौजूद थी, कितना अंतर था! तीनों बहनें कभी उसकी ओर देखतीं और कभी एलबम के पृष्ठों की ओर और अपने विस्मय को इस प्रकार प्रकट करतीं, "नर्गिस, तुम यह नर्गिस कैसे बन जाती हो?"

नर्गिस जवाब में केवल मुस्करा देती।

मेरी बीवी ने मुझे बताया कि घर में नर्गिस की हर हरकत, हर अदा में अल्हड़पन था। उसमें वह शोखी, वह तर्रारी, वह तीखापन नहीं था, जो परदे पर उसमें दिखाई देता है। वह बड़ी ही घरेलू किस्म की लड़की थी। मैंने ख़ुद यही महसूस किया था। लेकिन जाने क्यों, उसकी छोटी-छोटी आंखों में मुझे एक विचित्र प्रकार की उदासी तैरती नज़र आती थी, जैसे कोई लावारिस लाश तालाब के ठहरे पानी पर हवा के हलके-हलके झोंकों से बहती होती है!

यह निश्चय था कि ख्याति की जिस मंजिल पर नर्गिस को पहुंचना था, वह कुछ अधिक दूर नहीं थी। भाग्य अपना निर्णय उसके पक्ष में करके सारे संबंधित कागज़ात उसके हवाले कर चुका था। लेकिन फिर वह क्यों चिंतित और संतप्त थी? क्या अज्ञान के तौर पर वह यह महसूस तो नहीं कर रही थी कि इश्क़ और मुहब्बत का यह कृत्रिम खेल खेलते-खेलते एक दिन वह किसी ऐसे जलशून्य, निर्जन रेगिस्तान में निकल जाएगी, जहां रेत-ही-रेत, धूल-ही-धूल होगी—प्यास से उसका कंठ सूख रहा होगा और क्षितिज पर छोटी-छोटी बदलियों के स्तन में केवल इसलिए दूध नहीं उतरेगा कि वे ख़याल करेंगी कि नर्गिस का प्यार [illegible] बनावट है। धरती की कोख में पानी की बूंदें और अधि[illegible] [illegible] जाएंगी—इस विचार से कि उसकी प्यास महज़ ए[illegible]

दिखावा है और यह भी हो सकता है कि स्वयं नर्गिस भी यह महसूस करने लगे कि मेरी प्यास कहीं झूठी तो नहीं ?

इतने बरस बीत जाने पर, मैं अब उसे स्क्रीन पर देखता हूं, तो मुझे उसकी उदासी कुछ अजीब सी लगती है। पहले उसमें एक निश्चित खोज थी, लेकिन अब खोज भी उदास और कुंठित हो गई है। क्यों ? इसका उत्तर स्वयं नर्गिस ही दे सकती है।

तीनों बहनें चूंकि चोरी-चोरी नर्गिस के यहां गई थीं, इसलिए वे अधिक देर तक उसके पास न बैठ सकीं। छोटी दो को यह अंदेशा था कि ऐसा न हो कि मुझे इसका पता हो जाए। अतः उन्होंने नर्गिस से विदा चाही और वापस घर आ गईं।

नर्गिस के संबंध में वे जब भी बात करतीं, घूम-फिरकर उसके विवाह की समस्या पर आ जातीं। छोटी दो को यह जानने की इच्छा थी कि वह कब और कहां शादी करेगी ? बड़ी, जिसकी शादी हुए पांच वर्ष हो चुके थे, सोचती थी कि वह शादी के बाद मां कैसे बनेगी ?

कुछ देर तक मेरी बीवी ने नर्गिस से इस खुफ़िया मुलाक़ात का हाल छिपाए रखा। अंततः एक रोज़ बता दिया। मैंने बनावटी नाराज़गी ज़ाहिर की, तो उसने सच समझते मुझसे माफ़ी मांगी और कहा, "दरअसल में हमसे गलती हुई, मगर खुदा के लिए अब आप इसकी चर्चा किसीसे न कीजिएगा !"

वह चाहती थी कि बात मुझ ही तक रहे। एक अभिनेत्री के घर जाना तीनों बहनों के नज़दीक बहुत ही घटिया बात थी। वे इस 'हरकत' को छिपाना चाहती थीं। अतः जहां तक मुझे मालूम हुआ, इसका उल्लेख उन्होंने अपनी मां से भी नहीं किया था, हालांकि वह बिलकुल संकुचित विचारों की नहीं थीं।

मैं अब तक न समझ सका कि उनकी वह हरकत निंदनीय हरकत क्यों थी ? अगर वे नर्गिस के यहां गई थीं, तो इसमें बुराई ही क्या थी ? कलाकारी निंदनीय और घृणित क्यों समझी जाती है ? क्या हमारे परिवार में ऐसे व्यक्ति नहीं होते, जिनकी सारी उम्र धोखेबाज़ी और

छल-कपट में गुज़र जाती है ? नर्गिस ने तो कलाकारी को अपना पेशा बनाया, उसने इसको रहस्य बनाकर नहीं रखा था। कितना बड़ा फ़रेब है यह, जिसमें ये लोग फंसे रहते हैं !

मेरी फिल्म देखने की इच्छा और फिल्मों का शौक अमृतसर ही में समाप्त हो चुका था। इतने फिल्म देखे थे कि अब उनमें मेरे लिए कोई आकर्षण ही न रहा था। यही वजह है कि जब मैं साप्ताहिक 'मुसव्विर' का संपादन करने के सिलसिले में बंबई पहुंचा, तो महीनों किसी सिनेमा की ओर कदम न बढ़ाया। साप्ताहिक फिल्मी था। हर फिल्म का फ्री पास मिल सकता था, मगर तबीयत उधर को लगती ही नहीं थी।

उन दिनों अभिनेत्रियों में एक अभिनेत्री—नसीम बानो—विशेष रूप से प्रसिद्ध थी। उसकी सुंदरता और रूप की बहुत चर्चा थी। विज्ञापनों में उसे परी-चेहरा नसीम कहा जाता था। मैंने अपने ही अखबार में उसके कई फोटो देखे। वह बड़ी ही रूपवती थी। जवान थी। खास तौर पर आंखें बड़ी खूबसूरत थीं। और जब आंखें आकर्षक हों, तो सारा चेहरा आकर्षक बन जाता है।

नसीम के संभवत: दो फिल्म तैयार हो चुके थे, जो सोहराब मोदी ने बनाए थे और जनता में काफी लोकप्रिय हुए थे। ये फिल्म मैं नहीं देख सका था। मालूम नहीं, क्यों? काफी समय बीत गया। अब मिनर्वा मूवीटोन की ओर से उसके शानदार ऐतिहासिक फ़िल्म 'पुकार' का इश्तहार बड़े ज़ोरों पर हो रहा था। परी-चेहरा नसीम इसमें नूरजहां के रूप में पेश की जा रही थी और सोहराब मोदी स्वयं इसमें महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा कर रहे थे।

फिल्म की तैयारी में काफ़ी समय लगा और इस दौरान अखबारों और पत्रिकाओं में जो स्टिल प्रकाशित हुए, वे बड़े शानदार थे। नसीम नूरजहां की पोशाक में बड़ी आकर्षक, सुंदर और प्रभावशाली दिखाई देती थी।

'पुकार' के उद्घाटन-समारोह में मैं आमंत्रित था। यह जहांगीर की न्यायप्रियता का एक मनगढ़ंत क़िस्सा है, जो वड़े भावुक और थियेटरी अंदाज़ में पेश किया गया है। फ़िल्म में दो वातों पर वहुत ज़ोर था—संवादों और पहनावे पर। संवाद यद्यपि अस्वाभाविक और थियेटरी टाइप के थे, लेकिन वहुत ज़ोरदार और प्रशंसनीय थे, जो श्रोताओं पर अपना प्रभाव डालते थे। चूंकि ऐसा फ़िल्म इसके पहले नहीं वना था, इसलिए सोहराव मोदी का 'पुकार' सोने की खान सावित होने के अलावा भारतीय फ़िल्म उद्योग में एक क्रांति उत्पन्न करने का कारण भी हुआ।

नसीम की कलाकारी कमज़ोर थी। लेकिन उसकी कमज़ोरी को उसके प्राकृतिक सौंदर्य और नूरजहां के लिवास ने, जो उस पर ख़ूब सजता था, अपने अंदर छिपा लिया था।

इसी वीच नसीम के संवंध में भांति-भांति की अफ़वाहें फैल रही थीं। फ़िल्मी दुनिया में स्कैंडल आम होते हैं। कभी यह सुनने में आता था कि सोहराव मोदी नसीम वानो से शादी करनेवाला है। कभी अख़-वारों में यह समाचार प्रकाशित होता था कि निज़ाम हैदरावाद के सुपुत्र मुअज़्ज़मजाह साहव नसीम वानो पर डोरे डाल रहे हैं और भविष्य में शीघ्र ही उसे ले उड़ेंगे। यह समाचार सही था, क्योंकि निज़ाम के सुपुत्र का निवास उन दिनों अकसर वंवई में होता था और वह कई वार नसीम के मेरीन ड्राइव-स्थित मकान पर देखे गए थे।

शहज़ादे ने लाखों रुपए खर्च किए। वाद में हुस्न का हिसाव देने के सिलसिले में उन्हें वड़ी उलझनों का सामना करना पड़ा। किंतु यह वाद की वात थी। वह हज़रत अपने रुपयों के ज़ोर से नसीम की मां, उर्फ़ छमियां, को राज़ी करने में कामयाव हो गए। परिणामस्वरूप आप परी-चेहरा नसीम का सौंदर्य ख़रीदकर उसे उसकी मां के साथ हैदरावाद ले गए।

थोड़े ही समय के वाद दुनिया को देखे हुए छमियां ने यह अनुभव किया कि हैदरावाद एक क़ैदखाना है, जिसमें उसकी व[illegible] घुट रहा है। आराम और सुख के तमाम सामान वहां [illegible]

वातावरण में घुटन-सी थी। फिर क्या पता था कि शहज़ादे की चंचल तबीयत में यकायक कोई इन्कलाब आ जाता और नसीम बानो इधर की रहती, न उधर की। अतः छमियां ने बड़े टैक्ट से काम लिया। हैदराबाद से निकलना बहुत कठिन था। मगर वह अपनी बच्ची नसीम के साथ वापस बम्बई लौटने में सफल हो गई।

मैं फ़िल्मी दुनिया में दाखिल हो चुका था। कुछ देर 'मुंशी' की हैसियत से इम्पीरियल फिल्म कंपनी में काम किया, अर्थात डायरेक्टरों के हुक्म के मुताबिक उल्टी-सीधी भाषा में फिल्मों के संवाद लिखता रहा।

इसी बीच एक ऐलान नज़रों से गुज़रा कि कोई साहब 'अहसान' हैं। उन्होंने एक फिल्म कंपनी 'ताजमहल पिक्चर्स' नाम से स्थापित की है। पहला फिल्म 'उजाला' होगा, जिसकी हीरोइन नसीम बानो है।

इस फिल्म के निर्माताओं में दो मशहूर हस्तियां थीं। 'पुकार' का लेखक कमाल अमरोही और 'पुकार' ही का पब्लिसिटी मैनेजर एम० ए० मुगनी। फिल्म की तैयारी के दौरान कई झगड़े खड़े हुए। अमीर हैदर कमाल अमरोही और एम० ए० मुगनी की कई बार आपस में झपटें हुईं। ये दोनों व्यक्ति अदालत तक भी पहुंचे, मगर 'उजाला' अंततः पूर्ण हो ही गया।

कहानी मामूली थी, संगीत कमज़ोर था। डायरेक्शन में कोई दम नहीं था। अतः यह फिल्म सफल न हुआ और अहसानसाहब को खासा नुकसान उठाना पड़ा। परिणामस्वरूप उनको अपना कारोबार बंद कर देना पड़ा।

परंतु इस व्यवसाय में वह अपना दिल नसीम बानो को दे बैठे। अहसानसाहब के लिए नसीम अजनबी नहीं थी। उनके पिता खानबहादुर मुहम्मद सुलेमान, चीफ इंजीनियर, नसीम की मां, उर्फ छमिया, के पुजारी थे, यह कहिए कि एक दृष्टि से वह उनकी दूसरी बीवी थी।

अहसानसाहब को कभी-न-कभी नसीम से मिलने का अवसर मिला होगा। फ़िल्म की तैयारी के दौरान तो खैर वह नसीम के बिलकुल निकट रहते थे। किंतु लोगों का कथन है कि अहसान अपनी झेंपू और शरमीली तबीयत के कारण नसीम की आत्मीयता का पूरा लाभ नहीं उठा सके। सेट पर आते, तो ख़ामोश एक कोने में बैठे रहते। नसीम की बहुत कम बातें करते। कुछ भी हो, आप अपने उद्देश्य में सफल हो गए, क्योंकि एक दिन हमने सुना कि नसीम ने अहसान से दिल्ली में शादी कर ली है और यह इरादा प्रकट किया है कि वह अब फ़िल्मों में काम नहीं करेगी।

नसीम बानो के पुजारियों के लिए यह समाचार बड़ा हृदय-विदारक था, क्योंकि उसके हुस्न का जलवा केवल एक आदमी के लिए सुरक्षित हो गया था। अहसान और नसीम का इश्क़ तमाम मुश्किलों को पार करके शादी की मंज़िल तक कैसे पहुंचा, मुझे इसका ज्ञान नहीं, लेकिन इस संबंध में अशोककुमार का कथन बहुत दिलचस्प है। अशोककुमार कैप्टन सिद्दीक़ी नामक एक सज्जन का दोस्त था। यह जनाब अहसान के निकटतम संबंधी थे। 'उजाला' में इन्होंने काफ़ी रुपया लगाया था।

एक दिन जब अशोक सिद्दीक़ीसाहब के घर गया, तो वह नहीं थे, लेकिन वह सुगंध मौजूद थी—बड़ी मनमोहक, किंतु बड़ी उच्छृंखल! अशोक ने सूंघ-सूंघकर नाक के ज़रिए मालूम कर लिया कि वह सुगंध ऊपर की मंज़िल से आ रही है। सीढ़ियां चढ़कर वह ऊपर पहुंचा। कमरे के किवाड़ थोड़े-से खुले थे। अशोक ने झांककर देखा। नसीम बानो पलंग पर लेटी थी और उसके पहलू में एक सज्जन बैठे उससे हौले-हौले बातें कर रहे थे। अशोक ने पहचान लिया—हज़रत अहसान थे, जिनसे उसका परिचय हो चुका था।

अशोक ने जब कैप्टन सिद्दीक़ी से इस मामले में बात की तो वह मुस्कराए, "यह सिलसिला काफ़ी देर से जारी है।"

शादी पर और शादी के बाद कुछ अखबारों में हंगामा रहा। मगर फिर नसीम फ़िल्मी दुनिया से लुप्त हो गई।

इसी बीच फ़िल्मी दुनिया में कई क्रांतियां आईं। कई फ़िल्म कंपनियां

बनीं, कई टूटीं। कई सितारे उभरे, कई डूबे। हिमांशु राय की शोकपूर्ण मृत्यु के बाद बंबई टॉकीज में अराजकता फैली हुई थी। देविकारानी (श्रीमती हिमांशु राय) और रायबहादुर चुन्नीलाल (जनरल मैनेजर) में बात-बात पर चलती थी। नतीजा यह हुआ कि रायबहादुर अपने ग्रुप के साथ बंबई टॉकीज से अलग हो गए। इस ग्रुप में प्रोड्यूसर एस० मुखर्जी, कहानीकार और डायरेक्टर ज्ञान मुखर्जी, प्रसिद्ध अभिनेता अशोककुमार, कवि प्रदीप, साउंड रिकार्डिस्ट एस० वाचा, कामेडियन वी० एच० देसाई, डायलाग-लेखक शाहिद लतीफ़ और संतोषी शामिल थे।

बंबई टॉकीज से निकलते ही इस ग्रुप ने एक नई फिल्म कंपनी 'फिल्मिस्तान' के नाम से स्थापित की। प्रोडक्शन कंट्रोलर एस० मुखर्जी नियुक्त हुए, जो एक सिल्वर जुबली फ़िल्में बनाकर पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे। कहानी लिखी गई। स्टूडियो नए सामान से सुसज्जित हो गया। सब ठीक-ठाक था। मगर प्रोड्यूसर एस० मुखर्जी सख्त परेशान थे। बंबई टॉकीज से अलग होकर वह देविकारानी को 'जला' देने के लिए कोई सनसनी फैलानेवाली बात पैदा करना चाहते थे और यह बात हीरोइन के चयन से संबंधित थी।

बैठे-बैठे एक दिन एस० मुखर्जी को यह सूझी कि नसीम बानो को वापस खींचकर लाया जाए। यह वह ज़माना था, जब उसे अपने ऊपर पूर्ण विश्वास था। ताबड़-तोड़ सफलताओं के बाद उसको यह अनुभव होने लगा कि वह जिस काम में हाथ डालेगा, पूरा कर लेगा।

अत. तत्काल ही नसीम बानो तक पहुंचने के रास्ते सोच लिए गए।

अशोक की वजह से एस० मुखर्जी के भी कैप्टन सिद्दीकी से बड़े अच्छे संबंध थे। इसके अलावा रायबहादुर चुन्नीलाल के अहसान के पिता खानबहादुर मुहम्मद सुलेमान से अच्छे और घनिष्ठ संबंध थे। अत. दिल्ली में नसीम से संपर्क स्थापित करने में एस० मुखर्जी को किसी कठिनाई का सामना न करना पड़ा। परंतु सबसे बड़ी बात तो अहसान

को रज़ामंद करना था।

मुखर्जी का आत्मविश्वास काम आया। अहसान ने पहले तो साफ़ जवाब दे दिया, लेकिन आखिर रज़ामंद भी हो गया। दिल्ली में सफलता के झंडे गाड़कर जब मुखर्जी बंबई वापस आया, तो समाचार-पत्रों में यह खबर बड़े ठाठ से प्रकाशित कराई कि फ़िल्मिस्तान के पहले फ़िल्म, 'चल-चल रे नौजवान' की हीरोइन नसीम बानो होगी। फ़िल्मी क्षेत्रों में सनसनी फैल गई, क्योंकि नसीम फ़िल्मी-जगत से हमेशा के लिए संबंध-विच्छेद कर चुकी थी।

कुछ दिनों बाद मलाड से शाहिद लतीफ़ का फ़ोन आया कि प्रोड्यूसर एस० मुखर्जी मुझसे इंटरव्यू करना चाहते हैं, क्योंकि सिनेरियो डिपार्टमेंट के लिए उन्हें एक आदमी की ज़रूरत है।

नौकरी प्राप्त करने की मुझे कोई ख्वाहिश नहीं थी। केवल स्टूडियो देखने के लिए मैं फ़िल्मिस्तान चला गया। वातावरण बहुत अच्छा था, जैसे किसी यूनिवर्सिटी का। उसने मुझे बहुत प्रभावित किया। मुखर्जी से भेंट हुई, तो वह मुझे बहुत पसंद आए। अत: वहीं कंट्रैक्ट पर हस्ताक्षर कर दिए। वेतन बहुत थोड़ा था, कुल तीन सौ रुपए माहवार और दूरी भी अधिक थी। इलेक्ट्रिक ट्रेन से एक घंटे के क़रीब लगता था गोरेगांव पहुंचने में। लेकिन मैंने सोचा, ठीक है। वेतन थोड़ा है, परंतु मैं इधर-उधर से कमा लिया करूंगा।

आरंभिक दिनों में तो फ़िल्मिस्तान में मेरी हालत अजनबी की-सी थी, किंतु बहुत शीघ्र मैं सारे स्टाफ़ के साथ घुल-मिल गया। एस० मुखर्जी से तो मेरे संबंध दोस्ती तक पहुंच गए थे।

इस दौरान नसीम बानो की कुछ झलकियां देखने का मौक़ा मिला, क्योंकि सीनेरियो लिखा जा रहा था, इसलिए वह कुछ क्षणों के लिए मोटर में आती और वापस चली जाती।

एस० मुखर्जी बड़ा ही दिक्क़त पसंद आदमी है। महीनों कहानी को दुरुस्त करने में लग गए। खुदा-खुदा करके फ़िल्म की शूटिंग शुरू हुई। मगर ये वे सीन थे, जिनमें नसीम बानो नहीं थी। आखिर उससे एक

दिन भेंट हुई। स्टूडियो के बाहर फोल्डिंग कुरसी पर बैठी थी। टांग-पर-टांग रखे थरमस से चाय पी रही थी। अशोक ने उससे मेरा परिचय कराया। नसीम ने बड़ी बारीक आवाज़ में कहा, "मैंने इनके लेख और कहानियां पढ़ी हैं।"

थोड़ी देर औपचारिक वार्ता हुई और यह पहली मुलाकात खत्म हुई। चूंकि वह मेक-अप में थी, इसलिए मैं उसके असली हुस्न का अंदाज़ा न कर सका। एक बात जो मैंने विशेष रूप से अनुभव की, वह यह थी कि बोलते समय उसे कोशिश-सी करनी पड़ती थी।

'पुकार' की नसीम में और 'चल-चल रे नौजवान' की नसीम में धरती-आकाश का अंतर था। उधर वह मलका नूरजहां के राजसी लिबास में चमकती हुई और इधर भारत-सेवा-दल की एक स्वयंसेविका की वरदी में। तीन-चार बार मेक-अप के बिना देखा, तो मैंने सोचा—किसी महफ़िल को सजाने के लिए और मरते हुओं में नए जीवन का संचार करने के लिए इससे बेहतर और कोई नहीं हो सकती। वह जगह या कोना जहां नसीम खड़ी होती, एकदम सज जाता।

पोशाक और लिबास के चुनाव में वह बड़ी 'रिज़र्व' है। और रंग चुनने के मामले में जो सलीका मैंने इसके यहां देखा, और कहीं नहीं देखा। पीला रंग बड़ा खतरनाक है, क्योंकि बसंती रंग के कपड़े आदमी को अकसर पीलिया का मरीज़ बना देते हैं। मगर नसीम कुछ इस बेपरवाही से यह रंग इस्तेमाल करती थी कि मुझे आश्चर्य होता था।

नसीम का प्रिय पहनावा साड़ी है। गरारा भी पहनती है, मगर यदा-कदा; सलवार-कमीज़ पहनती है, मगर सिर्फ़ घर की चहारदीवारी में। वह कपड़े पहनती है, इस्तेमाल नहीं करती। यही कारण है कि उसके पास वर्षों पुराने कपड़े बड़ी अच्छी हालत में मौजूद हैं।

नसीम को मैंने बहुत परिश्रमी पाया। बड़ी नाज़ुक-सी औरत है, मगर सेट पर बराबर डटी रहती थी। मन को संतुष्ट करना आसान कार्य नहीं, कई-कई रिहर्सलें करनी पड़ती थीं। घंटों झुलसा देनेवाली रोशनी के सामने उठक-बैठक करनी पड़ती थी। लेकिन मैंने देखा कि

ने एक

नसीम उकताती नहीं थी। मुझे बाद में मालूम हुआ कि उसको कलाकारी का बहुत शौक है। हम शूटिंग के साथ-साथ कलाकारी भी देखते थे। नसीम बानो का काम बस गवारा था। उसमें चमक नहीं थी। वह संजीदा अदाएं मुहैया कर सकती है, अपनी मुग़लकालीन रूप-रेखा की झांकियां प्रस्तुत कर सकती है, परंतु क़दरदान निगाहों के लिए कलाकारी का जौहर पेश नहीं कर सकती। फिर भी 'चल-चल रे नौजवान' में उसका ऐक्टिंग पहले फ़िल्मों की तुलना में कुछ बेहतर ही था।

मुखर्जी उसमें कुछ गरमी और उत्तेजना उत्पन्न करना चाहता था। मगर यह कैसे पैदा होती? नसीम अत्यधिक ठंडे मिज़ाज की है। परिणाम यह हुआ कि 'चल-चल रे नौजवान' में नसीम का कैरक्टर गडमड होकर रह गया।

फ़िल्म रिलीज़ हुआ। रात को 'ताज' में एक शानदार पार्टी दी गई। फ़िल्म में नसीम जैसी भी थी, ठीक है; मगर वह 'ताज' में सबसे अलग नज़र आती थी, प्रभावशाली और मुग़लिया शहज़ादियों की-सी शान और व्यक्तित्व लिए हुए!

'चल-चल रे नौजवान' की तैयारी में दो बरस लग गए थे। जब फ़िल्म आशा और संभावना के अनुरूप सफल और लोकप्रिय न हुआ, तो हम-सब पर निष्क्रियता और पस्तहिम्मती छा गई। मुखर्जी को बहुत आघात पहुंचा। मगर कंट्रैक्ट के मुताबिक चूंकि उसे 'ताजमहल पिक्चर्स' के एक फ़िल्म की निगरानी करनी थी, इसलिए कमर कसकर काम शुरू करना पड़ा।

फ़िल्म 'चल-चल रे नौजवान' की तैयारी के दौरान अहसान और मुखर्जी के संबंध बहुत बढ़ गए थे। जब ताजमहल पिक्चर्स के फ़िल्म का प्रश्न आया, तो अहसान ने उसका सारा बोझ मुखर्जी के कंधों पर डाल दिया। मुखर्जी ने मुझसे परामर्श किया। अंत में यह तय हुआ कि 'बेगम' शीर्षक से मैं एक ऐसी कहानी लिखूं, जिसमें नसीम की ख़ूबसूरती का अधिक-से-अधिक उपयोग किया जाएं।

'बेगम' लिखने के दौरान मुझे नसीम बानो को बहुत निकट से देखने

के अवसर मिले। मैं और मुखर्जी दोपहर का खाना उनके घर पर खाते थे और हर रोज रात को देर तक कहानी में सुधार और संशोधन करते थे।

मेरा अनुमान था कि नसीम बड़े आलीशान मकान में रहती है। लेकिन जब घोडबदर रोड पर उसके बंगले में प्रवेश किया, तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। बंगला बहुत ही खस्ता हालत में था। बड़ा मामूली क़िस्म का फर्नीचर था, जो शायद किराए पर लिया गया था। घिसा हुआ कालीन, सीली हुई दीवारें और फर्श!

इस पृष्ठभूमि के साथ मैंने अभिनेत्री नसीम बानो को देखा। बंगले के बरामदे में वह ग्वाले से दूध के कूपनों के बारे में बातचीत कर रही थी। उसकी दबी-दबी आवाज़, जो ऐसा प्रतीत होता था कि कोशिश के साथ गले से निकाली जा रही है, ग्वाले से यह स्वीकार करवा रही थी कि उसने आधा सेर दूध का हेर-फेर किया है। आधा सेर दूध और सिनेमसार की अभिनेत्री अप्सरा नसीम बानो, जिसके लिए बीसवीं शताब्दी के कई फरहाद दूध की नहरें निकालने के लिए तैयार थे!

धीरे-धीरे मुझे ज्ञात हुआ कि 'पुकार' की नूरजहां बड़ी घरेलू क़िस्म की औरत है और उसमें वे विशेषताएं और गुण मौजूद हैं, जो एक साधारण गृहिणी में होते हैं। उसकी पिक्चर 'बेगम' का प्रोडक्शन शुरू हुआ, तो साज-सज्जा और वेश-भूषा की व्यवस्था का सारा काम उसने संभाल लिया। अनुमान था कि दस-बारह हज़ार रुपए इस मद पर उठ जाएंगे, लेकिन नसीम ने दरज़ी को घर में बिठाकर अपनी पुरानी साड़ियों, क़मीज़ों और ग़रारों से सभी पोशाकें तैयार करवा लीं।

नसीम के पास अनगिनत कपड़े हैं। मैं पहले कह चुका हूं कि वह लिबास पहनती है, इस्तेमाल नहीं करती। उस पर हर लिबास सजता है। यही कारण है कि 'बेगम' में एस० मुखर्जी ने उसको काश्मीर के देहात

की एक अल्हड़ लड़की के रूप में पेश किया। हीर का लंबा कुरता और लाचा पहनाया। आधुनिक लिबास में भी पेश किया।

हम सबने इस फ़िल्म की तैयारी पर बहुत मेहनत की थी, विशेष रूप से मुखर्जी ने। हम-सब देर तक (कभी-कभी रात के तीन-तीन बजे तक) बैठे काम करते रहते। मैं और मुखर्जी कहानी की नोक-पलक दुरुस्त करते रहते और नसीम और अहसान जागने का प्रयत्न करते रहते। जब तक अहसानसाहब की टांग हिलती रहती, वह हमारी बातें सुनते रहते। लेकिन ज्योंही उनकी टांग हिलनी बंद हो जाती, हम-सब समझ जाते कि वह गहरी नींद सो गए हैं।

नसीम को इससे बड़ी झुंझलाहट होती थी कि उसका पति नींद का ऐसा माता है कि कहानी के अत्यंत नाज़ुक मोड़ पर लंबी तानकर सो जाता है। मैं और मुख़र्जी अहसान को छेड़ते थे, तो नसीम बहुत खिन्न होती थी। वह स्वयं उसको अपनी ओर से झिंझोड़कर जगाती थी, मगर ऐसा प्रतीत होता था कि वह लोरी देकर उसे और गहरी नींद सुला रही है। जब नसीम की आंखें भी बंद होने लगतीं, तो मुखर्जी छुट्टी चाहते और चले जाते।

मेरा घर घोड़बंदर रोड से बहुत दूर था। बिजली की ट्रेन क़रीब-क़रीब पौन घंटे में मुझे वहां पहुंचाती थी। रोज आधी रात के बाद घर पहुंचता। एक अच्छी-खासी परेशानी थी। मैंने जब इसका उल्लेख मुखर्जी से किया, तो यह तय हुआ कि मैं कुछ समय के लिए नसीम ही के यहां रहने लगूं।

अहसान बेहद झेंपू हैं। कोई बात कहनी हो, तो बरसों लगा देते हैं। उन्हें मेरी सुविधा का ध्यान था। वह चाहते थे कि जिस वस्तु की मुझे आवश्यकता हो, मैं उनसे स्पष्ट कह दिया करूं। मगर शिष्टाचार और संकोच की यह हद थी कि वह दिल की बात ज़बान पर ला ही नहीं पाते थे। एक दिन अंत में उनके आग्रह पर नसीम ने मुझसे कहा, "थानूं जिस चीज दी ज़रूरत होवे, दस दिया करो।"

नसीम फ़र्स्ट क्लास पंजाबी बोलती थी। 'चल-चल रे नौजवान' के

ज़माने में जब मैंने रफ़ीक़ ग़ज़नवी से, जो इस पिक्चर में एक महत्त्वपूर्ण रोल अदा कर रहा था, ज़िक्र किया कि नसीम पंजाबी बोलती है, तो उसने अपने विशेष लहजे में मुझसे कहा कि तुम बकते हो। मैंने उसको विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया, मगर वह न माना।

एक दिन शूटिंग के दौरान नसीम और रफ़ीक़ दोनों मौजूद थे, अशोक अंग्रेज़ी भाषा के 'जवान-मरोड़' वाक्य नसीम से कहलवाने की चेष्टा कर रहा था कि मैंने रफ़ीक़ से पूछा, "लाले ! अधड़ोंजा किसे कहते हैं ?"

रफ़ीक़ ने उत्तर दिया, "यह किस भाषा का शब्द है ?"

मैंने कहा, "पंजाबी भाषा का, बताओ इसका क्या अर्थ है ?"

रफ़ीक़ ने अपनी विशेष मुद्रा में कहा, "मैंनू मालूम नईं, ओ अधड़ोंजे दे पुत्तर !"

नसीम ने गर्दन को हलका-सा झटका देकर रफ़ीक़ की ओर देखा और मुस्कराकर पंजाबी में उससे पूछा, "सच्ची, थानू मालूम नईं ?"

रफ़ीक़ ने जब नसीम के मुंह से पंजाबी सुनी, तो शाहदों के कथनानुसार वह अपनी परतो भूल गया। नसीम से उर्दू में कहा, "आप पंजाबी जानती हैं ?"

नसीम ने उसी तरह मुस्कराकर कहा, "जी हां !"

मैं नसीम से मुख़ातिब हुआ, "तो बताइए, अधड़ोंजे का क्या मतलब है ?"

नसीम ने कुछ देर सोचा, "वह लिबास जो घर में पहना जाता है।"

रफ़ीक़ ग़ज़नवी अपनी परतो और ज़्यादा भूल गया।

नसीम के निकटवर्ती वातावरण के बारे में जो अटकलें थीं, वे धीरे-धीरे गायब हो गईं। मुझे उनके बंगले के ग़ुसलख़ाने में पहली बार नहाने का अवसर मिला, तो बड़ी निराशा हुई। मेरा विचार था कि वह आधुनिक सामान और सुविधाओं से सज्जित होगा। कई तरह के नहानेवाले साल्ट होंगे, बढ़िया साबुन होगा, टब होगा और तमाम अटपटांग चीज़ें होंगी, जो हसीन औरतें और अभिनेत्रियां अपने सौंदर्य की वृद्धि के लिए इस्तेमाल करती हैं। मगर वहां केवल एक जस्ते की बाल्टी थी, एल्यूमीनियम

का एक ढोंगा और मलाड के कुएं का खारी पानी कि साबुन घिसते रहो और झाग पैदा न हो।

लेकिन नसीम को जब भी देखो, तरो-ताजा और निखरी-निखरी नजर आती थी। मेक-अप करती थी, मगर हलका-हलका—शोख़, चटकीले रंगों से उसे घृणा है। वह केवल वही रंग इस्तेमाल करती है, जो उसके मन और मिजाज के मुताबिक़ हों।

इत्रों और सुगंधों से उसे प्रेम है। अत: विभिन्न प्रकार की ख़ुशबुएं उसके पास मौजूद रहती हैं—यानी सेंट तो बहुत ही बहुमूल्य और नायाब हैं। जेवर एक-से-एक बढ़िया और मूल्यवान हैं, पर आभूषणों से लदी नहीं रहती। कभी हीरे का एक कंगन पहन लिया, कभी जड़ाऊ चूड़ियां, कभी मोतियों का हार।

उनका दस्तरख़्वान मैंने कभी सुसज्जित नहीं देखा। अहसान को दमे की शिक़ायत रहती है और नसीम को जुक़ाम की। दोनों परहेज़ की कोशिश किया करते थे। नसीम मेरी हरी मिर्चें ले उड़ती थी और अहसान नसीम की प्लेट पर हाथ साफ़ कर देते थे। दोनों में खाने पर क़रीब-क़रीब हमेशा एक अजीब बचकाना क़िस्म की छीना-झपटी होती थी। दोनों की निगाहें जब इस दौरान एक-दूसरे से टकराती हैं, तो देखनेवालों को साफ़ पता लग जाता है कि वे एक-दूसरे के पक्के और सच्चे प्रेमी हैं।

वैसे तो अहसान बहुत दुर्बल क़िस्म के आदमी हैं, मगर अपनी बीवी के मामले में बहुत कठोर साबित हुए हैं। नसीम को सिर्फ़ खास-खास लोगों से मिलने की इजाज़त है। साधारण अभिनेताओं और अभिनेत्रियों से नसीम को बातचीत करने की मनाही है। वैसे नसीम भी छिछोरे लोगों से नफ़रत करती है। शोरोगुल और हंगामा पैदा करनेवाली पार्टियों से वह खुद भी दूर रहती है। लेकिन एक बार उसे एक बहुत बड़े हंगामे में भाग लेना पड़ा।

यह हंगामा होली का हुड़दंग था। जिस तरह अलीगढ़ विश्व-र

विद्यालय की एक परंपरा वर्षाऋतु के आरंभ में 'मडपार्टी' है, उसी प्रकार बंबई टॉकीज़ की परंपरा होली की रग-पार्टी थी। चूंकि फ़िल्मिस्तान के लगभग सभी कर्मचारी बंबई टॉकीज़ के शरणार्थी थे, इसलिए यह परंपरा यहा भी कायम रही।

एस० मुखर्जी इस रग-पार्टी के 'रिंग लीडर' थे। महिलाओ की कमांड उनकी मोटी और हसमुख पत्नी (अशोक की बहन) के सुपुर्द थी। मैं शाहिद लतीफ के यहां बैठा था। शाहिद की बीवी इस्मत चुग़ताई और मेरी बीवी (सफिया) दोनो न जाने क्या बातें कर रही थी। एकदम शोर पैदा हुआ। इस्मत चिल्लाई, "लो सफिया, वे आ गए!...लेकिन मैं भी..."

इस्मत इस बात पर अड गई कि वह किसीको अपने ऊपर रग नही फेंकने देगी। लेकिन वह कुछ क्षणो ही में रगो में लथ-पथ भुतनी बनकर दूसरे भूतों में शामिल हो गई। मेरा और शाहिद लतीफ का हुलिया भी वही था, जो होली के अन्य भूतो का था।

पार्टी में जब कुछ और लोग शामिल हुए, तो शाहिद ने ऊचे स्वर में कहा, "चलो, नसीम के घर का रुख करो!"

रगों से लैस गिरोह घोडबदर रोड की ऊची-ऊची तारकोल लगी सतह पर बेढगे बेल-बूटे बनाता और शोर मचाता नसीम के बगले की ओर चल दिया। कुछ मिनटों में ही हम सब वहा थे। शोर सुनकर नसीम और अहसान बाहर निकले। नसीम हल्के रग की जार्जट की साड़ी में लिपटी मेक-अप नोक-पलक निकाले जब भीड़ के सामने बरामदे में आई, तो शाहिद लतीफ ने 'हमला' कर देने का हुक्म दिया। मगर मैंने उसे रोका, "ठहरो, पहले उनसे कहो कपड़े बदल आए।"

नसीम से कपडे बदलने को कहा गया, तो वह एक अदा के साथ मुस्कराई, "यही ठीक है!"

अभी ये शब्द उसके मुंह ही में थे कि होली की पिचकारिया बरस पड़ी। कुछ क्षणों ही में परी-चेहरा नसीम मानो एक अजीब तरह की खौफनाक चुड़ैल के रूप में परिवर्तित हो गई। नीले-पीले रगो की तह में

भी कोई वक़्त है जाने का ?"

हमने बहुत कहा कि कोई बात नहीं। मौसम अच्छा है। कुछ देर प्लेटफ़ार्म पर टहलेंगे, इतने में गाड़ी आ जाएगी। मगर नसीम और अह्सान ने बहुत आग्रह किया कि हम ठहर जाएं। मुखर्जी चले गए, इसलिए कि उनके पास मोटर थी और उन्हें बहुत दूर नहीं जाना था। मैं बाहर बरामदे में सो गया। अहसान वहीं कमरे में सोफ़े पर लेट गए।

सुबह नाश्ता करके जब मैं और सफ़िया चले तो रास्ते में उसने मुझे यह बात सुनाई, जो ख़ासी दिलचस्प है।

जब सफ़िया और नसीम ने सोने के लिए कमरे में प्रवेश किया, तो वहां एक ही पलंग था। सफ़िया ने इधर-उधर देखा और नसीम से कहा, "आप सो जाइए।"

नसीम मुस्कराई और पलंग पर नई चादर बिछाने लगी, "कपड़े तो बदल लें," यह कहकर उसने एक नया स्लीपिंग सूट निकाला, "यह तुम पहन लो—बिल्कुल नया है।"

'बिल्कुल नया' पर विशेष ज़ोर था, जिसका तात्पर्य मेरी बीवी समझ गई और कपड़े बदलकर बिस्तर पर लेट गई। नसीम ने संतोष से धीरे-धीरे अपना स्लीपिंग सूट पहना। चेहरे का मेक-अप उतारा, तो सफ़िया ने आश्चर्य-चकित होकर कहा, "हाय, तुम कितनी पीली हो, नसीम !"

नसीम के फीके होंठों पर मुस्कराहट खेल गई, "यह सब मेक-अप की करामात है !"

मेक-अप उतारने के बाद उसने चेहरे पर विभिन्न प्रकार के तेल मले और हाथ धोकर क़ुरान उठाया और पढ़ना शुरू कर दिया। मेरी बीवी बहुत प्रभावित हुई। अकस्मात उसके मुंह से निकला, "नसीम ! ...ख़ुदा की क़सम, तुम तो हम लोगों से कहीं अच्छी हो !"

इस अहसास से कि यह बात उसने ढंग से नहीं कही, सफ़िया एक-

दम खामोश हो गई।

क़ुरान का पाठ करने के बाद नसीम सो गई—अप्सरा नसीम—'पुकार' की नूरजहां, हुस्न की मलिका, सौंदर्य की रानी, अहसान की पेशानी, छमियां की बेटी और दो बच्चों की मां ! ○

अशोक कुमार

अशोककुमार

नजमुलहसन जब देविकारानी को ले उड़ा, तो बंबई टॉकीज़ में अराजकता फैल गई। फिल्म का श्रीगणेश हो चुका था। कुछ दृश्यों की शूटिंग भी संपन्न हो चुकी थी कि नजमुलहसन अपनी हीरोइन को सेलोलाइड की दुनिया से खींचकर वास्तविकता के संसार में ले गया। बंबई टॉकीज़ में सबसे अधिक चिंतित हिमांशु राय था—देविकारानी का पति और बंबई टॉकीज़ का 'रहस्यमय दिल व दिमाग', जिसे अंग्रेजी में 'ब्रेन बिहाइंड' कहते हैं।

एस० मुखर्जी—जुब्लीमेकर फिल्म-निर्माता (अशोककुमार के बहनोई) इन दिनों बंबई टाकीज में मिस्टर सावक वाचा, साउंड इंजीनियर, के असिस्टेंट थे। केवल बंगाली होने के नाते उन्हें हिमांशु राय से सहानुभूति थी। वह चाहते थे कि किसी-न-किसी तरह देविकारानी वापस आ जाए। अतः उन्होंने अपने आका हिमांशु राय से परामर्श किए बिना ही अपने तौर पर कोशिश की और अपनी विशेष तिकड़मों और चालाकी से देविकारानी को तैयार कर लिया कि वह कलकत्ता में अपने आशिक नजमुलहसन की आगोश छोड़कर वापस बंबई टॉकीज की गोद में चली आए, जिसमें उसके व्यक्तित्व के विकास और जौहर के पनपने की पूरी गुंजाइश थी।

देविकारानी वापस आ गई। एस० मुखर्जी ने अपने भावुक मालिक हिमांशु राय को भी अपने ढंग से तैयार कर लिया कि वह देविकारानी को ग्रहण कर लें। और बेचारा नजमुलहसन हम-जैसे उन असफल आशिकों की सूची में शामिल हो गया, जिनको राजनीतिक, धार्मिक और पूंजीवादी तिकड़मों और हस्तक्षेपों ने अपनी प्रेमिकाओं से जुदा कर दिया था।

अर्द्ध-निर्मित, अपूर्ण फ़िल्म से नजमुलहसन को कैंची से काटकर रद्दी की टोकरी में फेंक तो दिया गया, मगर अब यह सवाल सामने था कि सरफ़राज़ देविकारानी के लिए सेल्लोलाइड का हीरो कौन हो?

हिमांशु राय एक अत्यंत परिश्रमी और दूसरों से अलग-थलग रहकर खामोशी से अपने काम में रात-दिन व्यस्त रहनेवाले फ़िल्म-निर्माता थे। उन्होंने बंबई टॉकीज की नींव कुछ इस तरह डाली थी कि वह एक आदर्श चलचित्र-निर्माण-गृह प्रतीत हो। यही कारण है कि उन्होंने बंबई नगर से दूर एक स्थान मलाड को अपनी फ़िल्म कंपनी के लिए चुना था। वह वाहर का आदमी नहीं चाहते थे, इसलिए कि वाहर के आदमियों के संबंध में उनकी राय अच्छी नहीं थी। (नजमुलहसन भी वाहर का आदमी था।)

यहां फिर एस० मुखर्जी ने अपने भावुक मालिक की मदद की। उनका साला अशोककुमार बी० एस-सी० पास करके, एक बरस कलकत्ता में वकालत पढ़ने के बाद बंबई टॉकीज़ की लेबोरेटरी में बिना वेतन के काम सीख रहा था। नाक-नक़्शा अच्छे थे, थोड़ा-बहुत गा-बजा भी लेता था। अत: मुखर्जी ने प्रासंगिक वार्ता के बीच हीरो के लिए उसका नाम लिया। हिमांशु राय का सारा जीवन अनुभवों से परिपूर्ण था। उन्होंने कहा, "देख लेते हैं।" जर्मन केमरामैन वरशिंग ने अशोक का टेस्ट लिया। हिमांशु राय ने देखा और पास कर दिया। जर्मन फ़िल्म डायरेक्टर फ्रांज़ ऑस्टिन की राय इसके विपरीत थी। मगर बंबई टॉकीज में किसकी मजाल कि हिमांशु राय की राय के विरुद्ध मत प्रकट कर सके! अत: अशोककुमार गांगुली, जो उन दिनों बाईस बरस का युवक होगा, देविकारानी का हीरो निर्वाचित हो गया।

एक फ़िल्म बना, दो फ़िल्म बने—कई फ़िल्म बने और देविकारानी और अशोककुमार का अटूट फ़िल्मी जोड़ा बन गया। इन फ़िल्मों में से अधिकांश बहुत सफल हुए। गुड़िया-सी देविकारानी और बड़ा ही हार्म-

लेश (मासूम) अशोककुमार, दोनों सेलोलाइड पर जब साथ-साथ आते, तो बहुत ही प्यारे लगते। मासूम अदाएं, अल्हड़ जवानी और अहिंसक ढंग का प्रेम—लोगों को, जो हमलावर इश्क और अतिक्रमण करनेवाला प्रेम करने और देखने के शौकीन थे, यह नरम और नाजुक और लचकीला इश्क बहुत पसंद आया और ऐसे लोगों के हृदय में अशोक व देविकारानी का फिल्मी जोड़ा अपना घर कर गया। स्कूलों और कालिजों में छात्राओं का आयडियल अशोककुमार था और कालिजों के लड़के लंबी और सुर्री आस्तीनोंवाले लंबे बंगाली कुरते पहनकर गाते फिरते थे

तू बन की चिड़िया मैं बन का पंछी
बन-बन बोलूं रे···

मैंने अशोक के कई फिल्म देखे। देविकारानी, जहां तक कलाकारी का संबंध है, उसकी तुलना में मीलों आगे थी और हीरो के रूप में अशोक ऐसा प्रतीत होता था कि चाकलेट का बना है। मगर धीरे-धीरे उसने पर-पुर्जे निकाले और बंगाल के आदर्श अफीमी इश्क की पिनक से जाग्रत होने लगा।

अशोक जब लेबोरेटरी की चिलमन से बाहर निकलकर सिलवर स्क्रीन पर आया, तो उसका वेतन ७५ रुपए निश्चित हुआ। अशोक बहुत प्रसन्न था—उन दिनों अकेली जान के लिए, वह भी शहर से दूर एक गांव, मलाड में, इतने रुपए पर्याप्त थे। अब उसकी तनख्वाह एकदम दूनी हो गई—यानी १५० रुपए माहवार, तो वह और भी अधिक प्रसन्न हुआ। लेकिन जब डेढ़ सौ के ढाई सौ हुए, तो वह घबरा गया। उसने मुझे अपनी उस समय की विचित्र स्थिति का विवरण सुनाते हुए बतलाया, "बाई गॉड, मेरी हालत अजीब थी! ढाई सौ रुपए! मैंने खजांची से रुपए लिए, तो मेरा हाथ कांपने लगा। समझ में नहीं आता था कि इतने रुपए कहां रखूंगा? मेरा घर था एक छोटा-सा क्वार्टर। एक चारपाई थी, दो-तीन कुरसियां। चारों ओर जंगल। रात को अगर कोई चोर आ जाए—अर्थात यदि उसको मालूम हो जाए कि मेरे पास ढाई सौ रुपए हैं, तो क्या हो?···मैं एक अजीब चक्कर में पड़ गया। चोरी-

डकैती से मेरी जान जाती थी। घर आकर बहुत स्कीमें बनाईं। अंत में यह किया कि वे नोट चारपाई के नीचे बिछी हुई दरी में छिपा दिए। सारी रात बड़े डरावने-भयंकर सपने आते रहे। सुबह उठकर मैंने पहला काम यह किया कि वे नोट उठाकर डाकखाने में जमा करा दिए।"

अशोक मुझे यह बात अपने मकान पर सुना ही रहा था कि कलकत्ता का एक फ़िल्म-निर्माता उससे मिलने आया। कंट्रैक्ट तैयार था। मगर अशोक ने उस पर हस्ताक्षर नहीं किए। वह अस्सी हज़ार रुपए देता था और अशोककुमार की मांग पूरे एक लाख की थी—कहां ढाई सौ रुपए और कहां एक लाख!

अशोक की लोकप्रियता दिनों-दिन बढ़ती चली गई। चूंकि वह बाहर बहुत ही कम निकलता था और अलग-थलग रहता था, इसलिए जब लोग कहीं उसकी झलक देख पाते, तो एक हंगामा-सा पैदा हो जाता था। चलता ट्रैफ़िक बंद हो जाता था। उसके चाहनेवालों के ठट्ठ लग जाते थे और अकसर ऐसे मौक़ों पर पुलिस को डंडे के ज़ोर से उसे भीड़ की असीम श्रद्धा से मुक्ति दिलानी पड़ती थी।

अशोक अपने श्रद्धालुओं और प्रेमियों की श्रद्धा और प्रेम को स्वीकार तथा सहन करने के मामले में बहुत ही ज़लील साबित हुआ है। फ़ौरन ही चिढ़ जाता है, जैसे किसीने गाली दी हो। मैंने उससे कई बार कहा, "दादामणी, तुम्हारी यह हरकत बड़ी वाहियात है। खुश होने के बजाय तुम नाराज़ होते हो। क्या तुम इतना भी नहीं समझते हो कि ये लोग तुमसे मुहब्बत करते हैं?"

मगर यह बात समझने के लिए शायद उसके दिमाग़ में कोई ऐसा खाना नहीं है।

मुहब्बत से वह बिलकुल अछूता और प्रेम से क़तई अनभिज्ञ है। (यह देश-विभाजन से पहले तक की बात है। इस बीच उसमें क्या और कितने परिवर्तन हुए हैं, इनके संबंध में मैं कुछ नहीं कह सकता।)

सैकड़ों हसीन और सुंदर लड़कियां उसके जीवन में आईं, मगर वह सबके इसी अंदाज में उनके साथ पेश आया। तबीयत के लिहाज से वह एक ठेठ जाट है। उसके खान-पान और रहन-सहन तथा आचार-व्यवहार में एक विचित्र प्रकार का गवारपन है।

देविकारानी ने उससे प्रेम करना चाहा, मगर उसने बड़े असभ्य तरीके से उसकी आशाओं और प्रयत्नों को खाक में मिला दिया। एक अन्य अभिनेत्री ने साहस से काम लेकर अशोक को अपने घर बुलाया और बड़े ही नरम और नाजुक तरीके से उस पर अपने प्रेम और मुहब्बत को प्रकट किया। लेकिन जब अशोक ने बड़े भोंडेपन से उसका दिल तोड़ा, तो उस गरीब को पैंतरा बदलकर कहना पड़ा, "मैं आपकी परीक्षा ले रही थी, आप तो मेरे भाई हैं!"

अशोक को इस एक्ट्रेस का शरीर पसंद था। हर समय धुली-धुली, निखरी-निखरी रहती थी। उसकी यह अदा अशोक को बहुत भाती थी। अतः जब उसने चालबाजी लगाकर उसको अपना भाई बना लिया, तो अशोक को काफी कोफ्त हुई।

अशोक पेशेवर आशिक नहीं, लेकिन ताक-झांक का मर्ज उसको साधारण मर्दों का-सा है। महिलाओं की आकर्षक और आमंत्रण देनेवाली वस्तुओं को ध्यान से देखता है और उनके संबंध में अपने मित्रों से बातें भी करता है। कभी-कभी किसी नारी से शारीरिक संबंध स्थापित करने की आवश्यकता भी अनुभव करता है, मगर उसके अपने शब्दों में, "मंटो यार, हिम्मत नहीं पड़ती!"

साहस के मामले में वह वास्तव में बहुत थोड़ा है। किंतु यह थोड़ापन उसके वैवाहिक जीवन के लिए बहुत ही शुभ है। उसकी पत्नी शोभा से अगर उसकी इस कमजोरी का जिक्र किया जाए, तो वह निस्संदेह कह उठेगी, "ईश्वर की कृपा है कि गांगुली में ऐसा साहस नहीं और ईश्वर करे, यह हिम्मत उसमें कभी पैदा न हो!"

मुझे आश्चर्य है कि उसमें यह हिम्मत और साहस क्यों उत्पन्न न हुआ, जबकि सैकड़ों लड़कियों ने साहस से काम लेकर, लोक-लज्जा और

नैतिकता को क़ब्र में गाड़कर, उसको इश्क़ की आग में कूदने का निमंत्रण दिया ? उसकी निजी एवं व्यक्तिगत डाक में हज़ारों औरतों के इश्क़ और मुहब्बत से भरे प्रेमपूर्ण पत्र आए होंगे। मगर जहां तक मैं जानता हूं पत्रों के इस ढेर में से उसने शायद एक भी ख़त नहीं पढ़े—ख़त आते हैं, उसका मरियल सेक्रेटरी ही मूज़ा उन्हें मजे ले-लेकर पढ़ता है और दिनों-दिन और मरियल होता जाता है !

देश-विभाजन से कुछ मास पूर्व अशोक फ़िल्म 'चंद्रशेखर' के सिलसिले में कलकत्ता में था। हसन शहीद सुहरावर्दी (तब बंगाल के प्रधान मंत्री) के यहां से सोलह मिलीमीटर फ़िल्म देखने के बाद अपने डेरे पर लौट रहा था कि रास्ते में दो ख़ूबसूरत एंग्लो-इंडियन लड़कियों ने उसकी मोटर रोकी और लिफ़्ट चाही। अशोक ने कुछ मिनट की यह अय्याशी तो कर ली, मगर उसे अपने नए सिगरेट-केस से हाथ धोने पड़े। एक लड़की, जो शोख़ और अल्हड़ थी, सिगरेट के साथ सिगरेट-केस भी ले उड़ी। इस घटना के बाद अशोक ने कई बार सोचा कि उन छोकरियों से संपर्क बढ़ाया जाए और संपर्क बढ़ाकर संबंध (?) स्थापित किया जाए। बात मामूली थी, मगर उसकी हिम्मत न पड़ी।

कोल्हापुर में एक तलवार-ढाल और ख़ंजर के क़िस्म का भारी-भरकम, ऊटपटांग, जंगली फ़िल्म बन रहा था। अशोक का थोड़ा-सा काम शेष रह गया था। वहां से कई बुलावे आए, मगर वह न गया। उसका मन उस रोल से बहुत रुष्ट था, जो उसे अदा करने के लिए दिया गया था। मगर कंट्रैक्ट था। आख़िर एक रोज़ उसे जाना ही पड़ा। साथ में मुझे भी ले गया। उन दिनों मैं फ़िल्मिस्तान के लिए 'आठ दिन' नामक फ़िल्म लिख रहा था। चूंकि यह फ़िल्म उसे प्रोड्यूस और डायरेक्ट करना था, इसलिए उसने कहा, "चलो, यार ! वहां आराम से काम करेंगे।"

मगर आराम कहां—वह तो हराम था ! लोगों को तत्काल मालूम हो गया कि अशोककुमार कोल्हापुर आया है। परिणामस्वरूप उस होटल के आस-पास, जहां हम ठहरे थे, दर्शनाभिलाषी एकत्रित होने शुरू हो

मेरी बीवी भी अन्य महिलाओं की भांति अशोककुमार से बहुत प्रभावित थी। इतना ही नहीं, वह उसके प्रशंसकों में से एक थी।

एक दिन मैं अशोक को अपने घर ले आया। कमरे में प्रवेश करते ही मैंने ज़ोर से आवाज़ दी, "सफ़िया! आओ! अशोककुमार आया है!"

सफ़िया अंदर रोटी पका रही थी। जब मैंने लगातार आवाज़ें दीं, तो वह बाहर निकली। मैंने अशोक से उसका परिचय कराया, "यह मेरी बीवी है, दादामणी—हाथ मिलाओ इससे!"

सफ़िया और अशोक दोनों झेंप गए। मैंने अशोक का हाथ पकड़ लिया, "हाथ मिलाओ, दादामणी! शरमाते क्यों हो?"

बाध्य होकर उसे हाथ मिलाना पड़ा। संयोगवश उस दिन क़ीमे की रोटियां तैयार की जा रही थीं। अशोक खाकर आया था। मगर जब खाने पर बैठा, तो तीन हड़प कर गया!

यह विचित्र बात है कि बंबई में इसके बाद जब कभी हमारे यहां क़ीमे की गोश्त-भरी रोटियां तैयार होतीं, अशोक किसी-न-किसी तरह अवश्य आ जाता। इसका स्पष्टीकरण अथवा विश्लेषण न मैं कर सकता हूं, न अशोक। दाने-दाने पर मुहरवाला किस्सा मालूम होता है!

मैंने अभी-अभी अशोक को 'दादामणी' कहा है। बंगला में इसका अर्थ है—बड़ा भाई। अशोक से जब मेरी आत्मीयता बढ़ गई, तो उसने मुझे मजबूर किया कि मैं दादामणी ही कहा करूं। मैंने उससे कहा, "तुम बड़े कैसे हुए? हिसाब कर लो। मैं उम्र में तुमसे बड़ा हूं!"

हिसाब किया गया, तो वह आयु में मुझसे दो माह और कुछ दिन बड़ा निकला। अतः अशोक को मिस्टर गांगुली के बजाय मुझे दादामणी कहना पड़ा। यह मुझे पसंद भी था, क्योंकि इसमें बंगालियों की प्रिय *मिठाई रसगुल्ले की मिठास और गोलाई थी। वह मुझे पहले मिस्टर मंटो* कहता था। जब उससे दादामणी कहने का पैक्ट हुआ, तो वह मुझे सिर्फ़ मंटो कहने लगा, हालांकि मुझे यह नापसंद था।

परदे पर वह मुझे चाकलेट हीरो प्रतीत होता था। मगर जब मैंने उसको सेलोलाइड के खोल से बाहर देखा, तो वह एक कसरती आदमी

था। उसके मुक्के में इतनी शक्ति थी कि दरवाजे की लकड़ी में शिगाफ़ पड़ जाता था। घर पर वह हमेशा बाक्सिंग का अभ्यास करता था। शिकार खेलने का शौक़ न था। सख्त-से-सख्त काम कर सकता था। अफ़सोस मुझे केवल इस बात का हुआ कि उसे साज-सज्जा से दिलचस्पी नहीं थी। वह यदि चाहता, तो उसका घर आकर्षक-से-आकर्षक साजो-सामान से सुसज्जित होता। लेकिन इस ओर वह कभी ध्यान देता ही न था, और यदि देता था, तो उसके परिणाम कुछ अच्छे नहीं होते थे। ब्रुश उठाकर स्वयं ही सारे फ़र्नीचर पर गहरा नीला पेंट थोप दिया या किसी सोफ़े की पुश्त तोड़कर उसे दीवान की भोंडी शक्ल में परिवर्तित कर दिया !

मकान समुद्र के एक गंदे किनारे पर है। नमकीन पानी के छींटे बाहर की खिड़कियों को चाट रहे हैं। जगह-जगह लोहे के काम पर जंग की पपड़ियां जमी हैं। उनमें बड़ी उदासी फैलानेवाली बू आ रही है। मगर अशोक इन-सब बातों से अनभिज्ञ है। रेफ्रीजेरेटर कारीडोर में पड़ा झक मार रहा है। उसके साथ लगकर उसका ग्रांडियल अल्सेशियन कुत्ता सो रहा है। पास कमरे में बच्चे ऊधम मचा रहे हैं और अशोक गुसलखाने के अंदर पाट पर बैठा दीवारों पर हिसाब लगाकर देख रहा है कि रेस में कौनसा घोड़ा 'वन' आएगा अथवा डायलाग का परचा हाथ में लिए उनकी अदायगी और उच्चारण पर सोच रहा है।

अशोक को पामिस्ट्री और ज्योतिष से विशेष दिलचस्पी है। यह विद्या उसने अपने पिता से सीखी है। कई पुस्तकें भी पढ़ी हैं। अवकाश के समय वह समय काटने के लिए अपने दोस्तों की जन्म-पत्रियां देखा करता है।

मेरे नक्षत्रों का अध्ययन करके उसने एक दिन मुझसे सरसरी तौर पर पूछा, "तुम विवाहित हो ?"

मैंने उससे कहा, "तुम्हें नहीं मालूम ?"

उसने कुछ देर खामोश रहने के बाद कहा, "मैं जानता हूं, परंतु देखो मंटो, एक बात बताओ—नहीं, तुम्हारे तो अभी औलाद नहीं हुई ?"

मैंने उससे पूछा, "बात क्या है ? बताओ तो सही।"

उसने हिचकिचाते हुए कहा, "कुछ नहीं, जिन लोगों के नक्षत्रों की पोज़ीशन ऐसी होती है, उनकी पहली औलाद लड़का होती है, मगर वह जीवित नहीं रहती।"

अशोक को यह मालूम नहीं था कि मेरा लड़का एक साल का होकर मर गया था।

अशोक ने मुझे बाद में बताया कि उसका पहला बच्चा, जो लड़का था, मुर्दा पैदा हुआ था। उसने मुझसे कहा, "तुम्हारे और मेरे सितारों की स्थिति करीब-करीब एक-जैसी है और यह कभी हो ही नहीं सकता कि जिन लोगों के नक्षत्रों की पोज़ीशन ऐसी हो, उनके यहां पहली संतान लड़का न हो और वह न मरे।"

अशोक को ज्योतिष की सत्यता पर पूरी आस्था है, बशर्ते कि हिसाब सही और दुरुस्त हो। वह कहा करता है, "जिस तरह एक पाई की कमी-बेशी हिसाब में गड़बड़ कर देती है, उसी तरह सितारों के हिसाब में भी मामूली-सी गलती हमें कहीं-की-कहीं ले जाती है। यही वजह है कि प्रामाणिक रूप से कोई फल घोषित नहीं करना चाहिए, क्योंकि हो सकता है कि हमसे गलती हो गई हो।"

रेस के घोड़े के टिप हासिल करने में भी आमतौर पर अशोक इस ज्ञान से सहायता लेता है। घंटों बाथरूम में बैठा हिसाब लगाता रहता है। मगर पूरी रेस में सौ रुपए से अधिक उसने कभी नहीं खेला और यह विचित्र संयोग है कि वह हमेशा जीतता है, सौ के एक सौ दस हो गए, सौ-के-सौ ही रहे। मगर ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसके सौ में से एक पाई कम हुई हो—वह रेस जीतने के लिए नहीं, केवल तफरीह के लिए खेलता है। उसकी हसीन और रूपवती बीवी शोभा हमेशा उसके साथ होती है। मेंबर्स एनक्लोज़र में प्रवेश करते ही वह एक कोने में अलग-थलग बैठ जाता है। रेस आरंभ होने के कुछ मिनट पूर्व अपनी श्रीमती को रुपए देता है कि अमुक-अमुक नंबर के टिकट ले आओ। जब रेस समाप्त होती है, तो उसकी बीवी ही हमेशा खिड़की पर जाती है और जीतनेवाले टिकटों

कि हाए बहुत गन्दी है।

शोभा घरेलू महिला है। उसकी शिक्षा पर्याप्त है। अशोक मजाक में कहा करता है कि अनपढ़ है! उनका वैवाहिक जीवन बहुत सफल है। शोभा इतनी धन-संपत्ति होने के बावजूद काम-काज में व्यस्त रहती है। ठेठ बंगालियों की भांति सूती धोती पहने, उसके पल्लू के एक कोने में चाबियों का बड़ा गुच्छा उड़से, वह हमेशा अपने घरेलू काम-धंधे में व्यस्त नज़र आती है। शाम को जब कभी ह्विस्की का दौर चलता, तो गज़क की वस्तुएं शोभा अपने हाथ से तैयार करती थी। कभी नमकीन, कभी भुनी हुई दाल और कभी आलुओं के क़तले।

मैं ज़रा ज़्यादा पीने का आदी था। इसलिए शोभा अशोक से कहती थी, "देखो, गांगुली! मिस्टर मंटो को ज़्यादा मत देना! मिसेज़ मंटो हमको बोलेंगी।"

श्रीमती मंटो और श्रीमती गांगुली दोनों सहेलियां थीं। इनसे हम दोनों बहुत काम निकालते थे। महायुद्ध के कारण अच्छी क्वालिटी के सिगरेट बाज़ार में उपलब्ध नहीं थे। जितने भी बाहर से आते थे, सब-के-सब काले बाज़ार में चले जाते थे। यों तो हम आमतौर पर इस ब्लैक मार्केट ही से अपने लिए सिगरेट प्राप्त करते थे, मगर जब किसी माध्यम से ठीक मूल्य पर कोई वस्तु मिल जाती, तो हम विचित्र प्रकार की प्रसन्नता अनुभव करते।

मिसेज गांगुली जब शॉपिंग करने निकलतीं, तो मेरी बीवी सफ़िया को कभी-कभी अपने साथ ले जातीं। क़रीब-क़रीब हर बड़े दूकानदार को मालूम था कि मिसेज़ गांगुली प्रसिद्ध अभिनेता अशोककुमार की धर्मपत्नी हैं। परिणामस्वरूप उसकी मांग पर ब्लैक मार्केट की अंधेरी तहों में छिपी हुई चीज़ें बाहर निकल आती थीं।

अशोक ने अपनी ख्याति और लोकप्रियता से शायद ही लाभ था। मगर दूसरे लोग कभी-कभी उसके अनजाने ही उसके नाम से

ीधा कर लेते थे। राजा मेंहदी अली खां ने एक बार बड़े
अंदाज़ और तरीक़े से अपना उल्लू सीधा किया।
हदी अली खां फिल्मिस्तान में नौकर थे। मैं फ़िल्मिस्तान,
साहब के लिए एक कहानी लिख रहा था। एक रोज मुझे
र अशोक के सेक्रेटरी ने बताया कि राजासाहब बीमार हैं।
या, तो देखा कि हज़रत की बहुत बुरी हालत है। गला इस
ा है कि आवाज ही नहीं निकलती। कमज़ोरी की यह हालत
रा देकर भी उठा नहीं जाता। और आप नमकीन पानी के
र ओरिएंटल बाम की मालिश से अपना मर्ज़ दूर भगाने का
र रहे हैं। मुझे संदेह-सा हुआ कि कहीं डिप्थीरिया न हो।
उन्हें तत्काल ही लादा और अशोक को टेलीफ़ोन किया। उसने
ने एक परिचित डॉक्टर का नाम बतलाया कि वहां ले जाओ।
ासाहब को वहां ले गया। परीक्षा के बाद मालूम हुआ कि वास्तव
मूज़ी मर्ज़ है। डॉक्टरसाहब के आदेशानुसार मैंने फौरन ही उन्हें
ी बीमारियों के अस्पताल में दाखिल करा दिया। इंजेक्शन आदि
ाए। दूसरे दिन सुबह मैंने अशोक को टेलीफ़ोन पर राजा के रोग
चना दी। जब उसने कोई चिंता प्रकट नहीं की, तो मुझे क्रोध आ
कि तुम कैसे इन्सान हो? एक आदमी ऐसे भयानक रोग में फंसा
ारे की यहां कोई देख-भाल करता नहीं और तुम कोई दिलचस्पी
नहीं ले रहे!

अशोक ने उत्तर में केवल इतना कहा, "आज शाम को चलेंगे अस्-
पताल।"

टेलीफोन बंद करके मैं अस्पताल पहुंचा और देखा कि राजा की
लत पहले की अपेक्षा तनिक अच्छी है। डॉक्टर ने जो टीके कहे थे, वे मैं
आया था—वे उनके हवाले करके और सांत्वना देकर मैं अपने काम
र चला गया।

शाम को अशोक ने मुझे वहीं के दफ्तर में पकड़ लिया। मैं नाराज़
था, उसने मुझे राज़ी कर लिया। मोटर में अस्पताल पहुंचे। अशोक ने

राजा से मैंने प्रकट किया कि वह अत्यधिक व्यस्त था। इधर-उधर की बातें हुईं। इसके बाद अशोक मुझे घर छोड़कर चला गया।

दूसरे दिन अस्पताल पहुंचा, तो क्या देखता हूं कि राजा राजा बना बैठा है। बिस्तर की चादर उजली, तकिए का गिलाफ़ उजला, सिगरेट की डिबिया, पान, सिरहाने की खिड़की पर फूलदान! टांग-पर-टांग रखे, अस्पताल का साफ़-सुथरा चोला पहने, बड़े अय्याशाना तौर पर अख़बार पढ़ रहा था। मैंने आश्चर्यपूर्ण स्वर में उससे पूछा, "क्यों, राजा! यह सब क्या ?"

राजा मुस्कराया। उसकी बड़ी-बड़ी मूंछें थर्राईं, "यह तो कुछ भी नहीं—अभी और देखना !"

मैंने पूछा, "क्या ?"

"अय्याशी के सामान ! कुछ रोज़ मैं यहां और रहा, तो तुम देखोगे कि पासवाले कमरे में मेरा हरमसरा होगा । ख़ुदा जीता रखे मेरे अशोककुमार को ! बताओ, वह क्यों नहीं आया ?"

थोड़ी देर के बाद राजा ने बताया कि यह सब अशोक की कृपा का परिणाम है । अस्पतालवालों को पता चल गया कि अशोक उसकी हालत देखने अस्पताल आया था । इसलिए हर छोटा-बड़ा राजा के पास आया । हर एक ने उससे एक ही तरह के कई प्रश्न किए :

—क्या अशोक वास्तव में उसकी बीमारी का हाल जानने आया था ?

—अशोक से उसके क्या संबंध हैं ?

—क्या वह फिर आएगा ?

—कब और किस समय आएगा ?

राजा ने इन-सब उत्सुक लोगों को बताया कि अशोक उसका बहुत ही गहरा दोस्त और घनिष्ठ मित्र है । उसके लिए अपनी जान तक देने को तैयार है । वह अस्पताल में उसके साथ ही रहने को तैयार था, मगर डॉक्टर न माने । वह नित्य सुबह-शाम आता, लेकिन सिनेमा के कुछ कंट्रैक्ट ऐसे हैं कि मजबूरी है । आज शाम को ज़रूर आएगा ।

इसका परिणाम यह हुआ कि ख़ैराती अस्पताल के ख़ैराती कमरे

में उसको हर प्रकार की सुविधा उपलब्ध थी ।

समय समाप्त होने पर मैं जाने ही वाला था कि मेडिकल कॉलिज की लड़कियों के एक गिरोह ने प्रवेश किया । राजा मुस्कराया ।

"ख्वाजा ! हरमसरा के लिए यह साथवाला कमरा, मेरा ख़याल है, छोटा रहेगा !"

अशोक बहुत अच्छा ऐक्टर है । किन्तु वह अपनी जान-पहचान के, खुले दिल के लोगों के साथ मिलकर ही पूरी तन्मयता से काम कर सकता है । यही कारण है कि उन फिल्मों में उसका काम संतोषप्रद नहीं है, जो उसकी टीम ने नहीं बनाए । अपने लोगों में हो, तो वह खुलकर काम करता है, टेक्नीशियनों को परामर्श देता है, उनके सुझाव स्वीकार करता है, अपने ऐक्टिंग के बारे में लोगों से पूछ-ताछ करता है, एक सीन को विभिन्न रूपों में अदा करके स्वयं परखता है और दूसरों की राय लेता है । इस वातावरण से यदि कोई उसे बाहर ले जाता है, तो वह बहुत उलझन महसूस करता है ।

शिक्षित होने और बम्बई टॉकीज़-जैसी उच्च कोटि की फ़िल्मी संस्था के साथ कई वर्षों तक संबंध रहने की वजह से अशोक को फ़िल्म-उद्योग के हर विभाग की जानकारी प्राप्त हो गई थी । वह कैमरे की बारीकियां जानता था, लैबोरेटरी की पेचीदा समस्याएं समझता था, एडिटिंग का व्यावहारिक अनुभव रखता था और डायरेक्शन की गहराइयों का भी अध्ययन कर चुका था । फ़िल्मिस्तान में जब उससे राय-बहादुर चुन्नीलाल ने एक फ़िल्म प्रोड्यूस करने के लिए कहा, तो वह फ़ौरन तैयार हो गया ।

उन दिनों फ़िल्मिस्तान का प्रोपेगैंडा फ़िल्म, 'शिकारी', पूरा हो चुका था । इसलिए मैं कई महीनों की लगातार मेहनत के बाद घर में छुट्टियों के मज़े ले रहा था । एक दिन सावक वाचा आए । इधर-उधर की बातें करने के बाद कहने लगे, "सआदत ! एक कहानी लिख दो गांगुली के

लिए !" मेरी समझ में न आया कि सावक का क्या मतलब है। मैं फ़िल्मिस्तान में नौकर था और मेरा काम ही कहानियां लिखना था। गांगुली के लिए कहानी लिखवाने के लिए सावक की सिफ़ारिश की क्या आवश्यकता है? मुझसे वहां फ़िल्मिस्तान का कोई ज़िम्मेदार सदस्य भी कहता, तो मैं कहानी लिखनी आरंभ कर देता। किंतु बाद में मुझे मालूम हुआ कि अशोक चूंकि फ़िल्म स्वयं प्रोड्यूस करना चाहता है, अतः उसकी इच्छा है कि मैं उनकी ख़्वाहिश के मुताबिक़ कोई अत्यंत अच्छी कहानी लिखूं। वह स्वयं मेरे पास इसलिए न आया कि वह दूसरों से कई कहानियां सुन चुका था।

अंततः सावक के साथ समय निश्चित हुआ और हम-सब सावक ही के साफ़-सुथरे फ़्लैट में जमा हुए। अशोक को कैसी कहानी चाहिए थी, यह ख़ुद उसको मालूम नहीं था, "बस, मंटो, ऐसी कहानी हो कि मज़ा आ जाए ! इतना ध्यान रखो कि यह मेरा पहला फ़िल्म होगा !"

हम-सबने मिलकर घंटों दिमाग़पच्ची की, मगर कुछ समझ में न आया।

दिन-भर के प्रयत्नों की असफलता की ग्लानि को दूर करने के लिए शाम को बाहर टेयर्स पर ब्रांडी का दौर शुरू हुआ। शराब के चुनाव में सावक वाचा बहुत ही अच्छी रुचि का मालिक है। ब्रांडी, चुनांचे, स्वाद और गुण में बहुत अच्छी थी। कंठ से उतरते ही आनंद आ गया। सामने चर्च गेट स्टेशन था। नीचे बाज़ार में खूब चहल-पहल थी। उधर बाज़ार के अंतिम छोर पर समुद्र औंधे मुंह लेटा सुस्ता रहा था। बड़ी-बड़ी क़ीमती कारें सड़क की चमकीली सतह पर तैर रही थीं।···थोड़ी देर के बाद एक हांफता हुआ सड़क कूटनेवाला इंजन अवतरित हुआ।··· मैंने ऐसे ही सोचा···ख़ुदा मालूम कहां से यह विचार मेरे दिमाग़ में आ टपका कि यदि इस टेयर्स से कोई लड़की एक परचा गिराए इस नीयत से कि वह जिसके हाथ लगेगा, वह उससे विवाह करेगी, तो क्या हो? ···हो सकता है कि परचा किसी पेकार्ड मोटर में जा गिरे···और यह भी हो सकता है कि उड़ता-उड़ता सड़क-कूटनेवाले इंजन के ड्राइवर के

षा पहुंचे'''संभव और असंभव का, हो सकने का यह सिलसिला
ना लंबा था और कितना दिलचस्प !

मैंने इसकी चर्चा अशोक और सावक से की । उनको लुत्फ़ आ गया
: मज़ा लेने की खातिर हमने ब्रांडी का एक और दौर चलाया और
गाम कल्पना की उड़ानें शुरू कर दीं । जब महफ़िल बरखास्त हुई,
तय पाया कि कहानी की बुनियादें इसी विचार पर रखी जाएं ।

कहानी तैयार हो गई । मगर उसका रूप कुछ और था । सुंदरी
लिखा हुआ परचा न रहा और न सड़क कूटनेवाला इंजन । पहले
चार था कि ट्रेजेडी होनी चाहिए, किंतु अशोक चाहता था कि कामेडी
—और वह भी बहुत तेज रफ्तार ! अतः दिमाग की सारी शक्तियां
सी ओर व्यय होने लगीं । कहानी पूरी हो गई तो अशोक को पसंद
ई । शूटिंग शुरू हो गई । अब फ़िल्म का एक-एक फ्रेम अशोक के
र्देशन में तैयार होने लगा । बहुत कम लोग जानते हैं कि 'आठ दिन'
फ़िल्म आदि से अंत तक अशोक ही की डायरेक्शन का परिणाम था ।

अशोक जितना अच्छा कलाकार है, उतना ही अच्छा निर्देशक
भी है । इसका ज्ञान मुझे 'आठ दिन' की शूटिंग के दौरान हुआ ।
साधारण-से-साधारण दृश्य पर भी बहुत परिश्रम करता था । शूटिंग से
एक दिन पहले वह मुझसे संशोधित सीन लेता और गुसलखाने में बैठकर
घंटों उसकी नोक-पलक पर विचार करता रहता । यह विचित्र बात है
कि बाथरूम के अलावा और किसी जगह वह पूरी तन्मयता और लगन
से विचारणीय समस्याओं पर गौर नहीं कर सकता ।

इस फ़िल्म में चार नए आदमी ऐक्टर के रूप में पेश हुए । राजा
मेहदी अली खां, उपेंद्रनाथ अश्क, महसन अब्दुल्ला (रहस्यमयी नैना के
भूतपूर्व पति) और स्वयं मैं । तय यह भी हुआ था कि एस० मुखर्जी को
भी एक रोल दिया जाएगा, किंतु समय आने पर वह अपनी बात से
फिर गए, इसलिए कि उनके फ़िल्म 'चल-चल रे नौजवान' में कैमरा की

दहशत के कारण मैंने काम करने से इन्कार कर दिया था। मुखर्जी का बहाना हाथ आया—वास्तव में वह स्वयं कैमरा से भयभीत थे।

उनका रोल एक फौजी का था। उसके लिए लिबास, पोशाक आदि सब तैयार थे। जब मुखर्जी ने इन्कार किया, तो अशोक बहुत सिटपटाया कि उनके स्थान पर किसे नियुक्त करे? कई दिन शूटिंग बंद रही। रायबहादुर चुन्नीलाल जब लाल-पीले होने लगे, तो अशोक मेरे पास आया। मैं कुछ दृश्यों को दुबारा लिख रहा था। उसने मेज़ पर से मेरे कागज़ उठाकर एक ओर रखे और कहा, "चलो, मंटो!"

मैं उसके साथ चल पड़ा। मेरा खयाल था कि वह मुझे नए गीत की धुन सुनवाने ले जा रहा है। मगर वह मुझे सैट पर ले गया और कहने लगा, "पागल का पार्ट तुम करोगे!"

मुझे ज्ञात था कि मुखर्जी इन्कार कर चुका है और अशोक को इस विशेष रोल के लिए कोई आदमी नहीं मिल रहा। किंतु यह मालूम नहीं था कि वह मुझसे कहेगा कि मैं यह रोल अदा कर दूं। अतः मैंने उससे कहा, "पागल हुए हो?"

अशोक गंभीर हो गया और मुझसे कहने लगा, "मंटो, तुम्हें यह रोल लेना ही पड़ेगा!"

राजा मेहदी अली खां और उपेंद्रनाथ अश्क ने भी आग्रह किया। राजा ने कहा, "तुमने मुझको अशोक का बहनोई बना दिया, हालांकि मैं शरीफ़ आदमी कदापि इसके लिए तैयार न था, क्योंकि मैं अशोक का आदर करता हूं। तुम पागल बन जाओगे, तो कौनसी आफ़त आ जाएगी?"

इस पर मज़ाक शुरू हो गया और मज़ाक-मज़ाक में सआदत हसन मंटो, पागल फ़्लाइट लेफ़्टिनेंट कृपाराम बन गए। कैमरा के सामने मेरी जो हालत हुई, उसको अल्लाह ही बेहतर जानता है!

फ़िल्म तैयार होकर प्रदर्शन के लिए पेश हुआ, तो सफल सिद्ध हुआ। आलोचकों ने उसे श्रेष्ठतम कामेडी घोषित किया। मैं और अशोक विशेष रूप से प्रसन्न थे और हमारा इरादा था कि अब की कोई नए

दृष्टि से हिंदू थे, निकाल बाहर किया, तो काफ़ी गड़बड़ हुई। किंतु जब उक्त शून्य को भरा गया, तो मुझे विदित हुआ कि कई प्रमुख पद मुसलमानों के पास हैं। मैं था। शाहिद लतीफ़ था। इस्मत चुगताई थी। कमाल अमरोहवी था। हसरत लखनवी था। नज़ीर अजमेरी, नाज़िम पानीपती और म्यूज़िक डायरेक्टर ग़ुलाम हैदर थे। ये सब जमा हुए, तो हिंदू कर्मचारियों में सावक वाचा और अशोककुमार के विरुद्ध घृणा की भावनाएं उत्पन्न हो गईं। मैंने अशोक से इसका उल्लेख किया, तो वह हंसने लगा, "मैं वाचा से कह दूंगा कि वह डांट पिला दे।"

डांट बताई गई। तो उसका प्रभाव उलटा हुआ। वाचा को गुमनाम पत्र प्राप्त होने लगे कि यदि उसने अपने स्टूडियो से मुसलमानों को बाहर न निकाला, तो उसको आग लगा दी जाएगी। यह ख़त वाचा पढ़ता, तो आग-बबूला हो जाता, "साले! मुझसे कहते हैं, मैं ग़लती पर हूं!...मैं ग़लती पर हूं...मैं ग़लती पर हूं...तो उनके बाप का क्या जाता है?...आग लगाएं, तो मैं उन सबको उसमें झोंक दूंगा!"

अशोक का दिल व दिमाग़ सांप्रदायिकता से बिलकुल पाक है। वह कभी इस तरह सोच ही नहीं सकता था, जिस तरह आग लगाने की धमकियां देनेवाले गुंडे सोचते थे। वह मुझसे हमेशा कहता, "मंटो! यह सब पागलपन है।...धीरे-धीरे दूर हो जाएगा।"

लेकिन धीरे-धीरे दूर होने के बजाय यह पागलपन बढ़ता ही चला जा रहा था...और मैं स्वयं को अपराधी अनुभव करता था, इसलिए कि अशोक और वाचा मेरे दोस्त थे, वे मुझसे परामर्श लेते थे, इसलिए कि उनको मेरी नेकनीयती पर भरोसा था। किंतु मेरी यह नेकनीयती मेरे भीतर सिकुड़ रही थी...मैं सोचता था, यदि बंबई टॉकीज़ को कुछ हो गया, तो मैं अशोक और वाचा को क्या मुंह दिखलाऊंगा?

सांप्रदायिक उपद्रव ज़ोरों पर थे। एक दिन मैं और अशोक बंबई टॉकीज़ से वापस आ रहे थे। रास्ते में देर तक उसके घर बैठे रहे। शाम को उसने कहा, "चलो, मैं तुम्हें छोड़ आऊं।"

शार्ट कट की खातिर वह मोटर को एक ख़ालिस मुस्लिम महल्ले में

गया !···सामने से एक बारात आ रही थी। जब मैंने बैंड की
वाज़ सुनी, तो मेरे होश-हवास गुम हो गए। एकदम अशोक का हाथ
कड़कर मैं चिल्लाया, "दादामणी ! यह तुम किधर आ निकले ?"

अशोक मेरा मतलब समझ गया। मुस्कराकर उसने कहा, "कोई
ंता न करो।"

मैं चिंता क्यों न करता ? मोटर ऐसे इस्लामी मुहल्ले में थी, जहां
किसी हिंदू का आना-जाना हो ही नहीं सकता था। अशोक को कौन
ही पहचानता था कि वह हिंदू है—एक बहुत बड़ा हिंदू—जिसकी हत्या
हत्त्वपूर्ण थी !·· मुझको अरबी भाषा में कोई दुआ याद नहीं थी।
ुरान-शरीफ की कोई उपयुक्त आयत भी नहीं आती थी। मन-ही-मन
अपने ऊपर लानतें भेज रहा था और धड़कते हुए दिल से अपनी ज़बान
ें अनोखी-सी दुआ मांग रहा था कि—ऐ खुदा ! मेरी इज्जत बचाना···
ऐसा न हो कि कोई मुसलमान अशोक को मार दे और मैं सारी उम्र
उसका खून अपनी गरदन पर महसूस करता रहूं। यह गरदन कौम की
नहीं, मेरी अपनी गरदन थी, मगर यह ऐसी जलील हरकत के लिए
दूसरी जाति के सामने शरम और रंज के कारण झुकना नहीं चाहती।

जब मोटर बरात के जुलूस के पास पहुंची, तो लोगों ने चिल्लाना
आरंभ कर दिया—अशोककुमार !···अशोककुमार !

मैं बिलकुल नर्वस हो गया। अशोक स्टीयरिंग पर हाथ रखे खामोश
था। मैं आतंक और भय के संकुचित दायरे से बाहर निकलकर जन-
समूह से यह कहनेवाला था कि "देखो, होश की बात करो ! मैं मुसल-
मान हूं, यह मुझे मेरे घर छोड़ने जा रहा है···" कि दो नवयुवकों ने
आगे बढ़कर बड़े आराम से कहा, "अशोकभाई ! आगे रास्ता नहीं मिलेगा,
इधर बाजू की गली से चले जाओ।"

अशोकभाई ! अशोक उनका भाई था ! और मैं कौन था ?···मैंने
अपने पहनावे की ओर देखा, जो खादी का था· 'मालूम नहीं, उन्होंने

कुलदीप कौर

यह उस प्रसिद्ध अभिनेत्री का नाम है, जो भारत की कई फिल्मों में आ चुकी है और आपने अवश्य ही उसे सिनेमा के परदे पर कई बार देखा होगा। मैं जब भी उसका नाम किसी फिल्म के विज्ञापन में देखता हूं, मेरी कल्पना में उसकी पूरी शक्ल बाद में, किंतु सबसे पहले उसकी नाक उभरती है—तीखी, बहुत तीखी नाक! और फिर मुझे बंबई टॉकीज की वह दिलचस्प घटना याद आ जाती है, जो मैं अभी बयान करनेवाला हूं।

देश-विभाजन पर जब पंजाब में दंगे शुरू हुए, तो कुलदीप कौर, जो लाहौर में थी और वहां फिल्मों में काम कर रही थी, पलायन करके बंबई चली आई। उसके साथ उसका 'प्रेमी' प्राण भी था, जो पंचोली की कई फिल्मों में काम करके ख्याति प्राप्त कर चुका था।

अब प्राण का जिक्र आया है, तो उसके संबंध में भी कुछ पंक्तियां परिचय-स्वरूप लिखने में कोई आपत्ति की बात नहीं। प्राण अच्छा-खासा सुंदर पुरुष है। लाहौर में उसकी ख्याति इस कारण भी थी कि वह बड़ा ही खुशपोशाक था, यानी सुंदर कपड़े पहननेवाला था और बहुत ठाठ से रहता था। उसका तांगा-घोड़ा लाहौर के रईसी तांगों में सबसे खूबसूरत और आकर्षक था। मुझे मालूम नहीं, प्राण से कुलदीप कौर की दोस्ती कब और किस तरह हुई, इसलिए कि मैं लाहौर में नहीं था। किंतु फिल्मी मित्रताएं और फिल्मी संपर्क ताजमहल की तरह सातवें या आठवें आश्चर्य की वस्तुएं तो हैं नहीं। एक फिल्म की शूटिंग के दौरान अभिनेत्रियों का दोस्ताना एक ही समय में कई पुरुषों से हो सकता है, जो उस फिल्म से संबद्ध हों।

जिन दिनों प्राण और कुलदीप का प्रेम चल रहा था, उन दिनों स्व-

गीत श्याम भी गाता था। पूना और बंबई में किस्मत-आजमाई करने
बाद वह शहर लाहौर चला गया था, जिससे उसे अगाध प्रेम था। इश्क़
पेशा आदमी था और कुलदीप भी इस मैदान में उससे पीछे नहीं थी।
दोनों की एक विशेष प्वाइंट पर भिड़ंत हुई। संभव था कि वे एक
दूसरे में खो जाते कि एक अन्य लड़की ने श्याम के जीवन में प्रवेश
कर लिया। उसका नाम मुमताज था, जो ताजी के नाम से प्रसिद्ध हुई।
यह जेब क़ुरैशी, एम० ए०, की छोटी बहन थी। कुलदीप को श्याम की
यह कलाबाजी पसंद न आई। अतः वह उससे नाराज हो गई और हमेशा
नाराज रही। मैं यहां आपको यह बता दूं कि कुलदीप बड़ी हठीली
औरत है। जो बात उसके दिमाग़ में घर कर जाए, उस पर अड़ी रहती
है। मैं आपको एक दिलचस्प बात बताऊं। यह घटना बंबई की है।

हम तीनों बंबई टॉकीज़ में थे। एक शाम को बिजली की ट्रेन में
हम अपने-अपने घर जा रहे थे। फ़र्स्ट क्लास का डिब्बा उस दिन लगभग
खाली था—यानी हम तीनों के सिवा उसमें और कोई मुसाफ़िर न था।

श्याम ऊंची आवाज़ का जवान और मुंहफट इन्सान था। जब उसने
देखा कि कंपार्टमेंट में कोई ग़ैर नहीं है, तो उसने कुलदीप कौर से छेड़
खानी शुरू कर दी। परंतु मैं समझता हूं कि उसका मूल उद्देश्य यह था
कि वह रिश्ता, जो लाहौर में क़ायम होते-होते रह गया था, अब यहां
बंबई में क़ायम हो जाए, क्योंकि ताज़ी से उसकी खटपट हो गई थी।
रमोला कलकत्ता में थी और निगार सुल्ताना संगीतकार मधोक के पास।
वह इन दिनों खुद अपने ही कहे मुताबिक़ 'खाली हाथ' था।

अतः उसने कुलदीप कौर से कहा, "के० के०, तुम मुझसे दूर-दूर
क्यों रहती हो? इधर आओ, मेरी जान! मेरे पास बैठो!"

कुलदीप की नाक और तीखी हो गई। बोली, "श्यामसाहब! आप
मुझ पर डोरे न डालें।"

मैं उनके वार्तालाप को, जो मुझे पूरी तरह से याद है, यहां नकल
करना नहीं चाहता, इसलिए कि वह बहुत बेबाक था। वैसे उसका सार
अपने शब्दों में बयान किए देता हूं। श्याम कभी गंभीरता और संजीदगी

दगी से बात नहीं करता था। उसके प्रत्येक शब्द में एक कहकहा, एक ठहाका होता था। उसने कुलदीप से उसी विशेष लहजे में कहा, "जानेमन ! उस उल्लू के पट्ठे को छोड दो और मेरे साथ नाता जोड़ो। वह मेरा दोस्त है, लेकिन यह मामला बड़ी आसानी से तय हो सकता है।"

कुलदीप कौर की आंखें उसकी नाक की तरह बड़ी और तीखी हैं। उसके होंठ भी बड़े तीखे हैं। उसके चेहरे का प्रत्येक भाग तीखा है। जब वह अपनी बड़ी-बडी आखें झपकाकर बात करती है, तो आदमी बौखला जाता है कि यह क्या मुसीबत है !

उसने तेज़-तेज़ निगाहों से श्याम की ओर देखा और उससे अधिक तेज लहजे में उससे कहा, "मुंह धोकर रखिए, श्यामसाहब !"

श्याम-जैसे फंटूश पर औरतों की वाक्-पटुता का भला क्या प्रभाव पड़ता ? उसने एक ठहाका लगाया और कहा, "के० के०, मेरी जान ! तुम लाहौर में मुझ पर मरती थी, याद नहीं तुम्हें ?"

अब कुलदीप ने ठहाका लगाया, जिसमें नारी का व्यग्य भरा था, "आपको वहम हो गया था !"

श्याम ने कहा, "तुम गलत कहती हो, तुम वास्तव में मुझ पर मरती थी।"

मैंने कुलदीप की ओर देखा और मुझे महसूस हुआ कि उसके शरीर में समर्पण की इच्छा मौजूद है, मगर उसका हठीला दिमाग़ उसको इस इच्छा को, इस कामना को रद्द करने के प्रयत्नों में व्यस्त है। उसने अपनी तीखी पलकें फड़फड़ाकर कहा, "मरती थी, लेकिन अब नहीं मरूंगी !"

श्याम ने अपनी उसी फटूश मुद्रा में कहा, "अब नहीं मरोगी, तो कल मरोगी ! मरना बहरहाल तुम्हें मुझ पर ही है !"

कुलदीप कौर भन्ना गई, "श्याम ! तुम मुझसे आख़िरी बार सुन लो कि तुम्हारा-मेरा कोई सबब नहीं हो सकता। तुम इतराते हो। हो सकता है, लाहौर में कभी मेरी तबीयत तुम पर आई हो, लेकिन जब तुमने बेदर्दी बरती, तो मैं क्यों तुम्हें मुंह लगाऊं ? अब इस किस्से को ख़त्म करो !"

किस्सा ख़त्म हो गया, लेकिन सिर्फ़ कुछ समय के लिए, क्योंकि श्याम अधिक बहसों और वाद-विवाद का अभ्यस्त नहीं था।

कुलदीप कौर अटारी (अमृतसर) के एक मशहूर मालदार सिख-घराने से संबंध रखती है। इस घराने का एक व्यक्ति लाहौर की एक प्रसिद्ध मुसलमान औरत से संबंधित है, जिसको उसने लाखों रुपए दिए, और सुना है कि अब भी देता है।

यह मुसलमान महिला किसी ज़माने में ख़ूबसूरत होगी, मगर अब मोटी और भद्दी हो गई है। किंतु अटारी के वह सिख महाशय अब भी नियमित रूप से यहां लाहौर में फ़्लैटीज़ होटल में आते हैं और अपनी मुसलमान प्रेमिका के साथ कुछ 'मीठे' दिन बिताकर वापस चले जाते हैं।

जब बंटवारा हुआ, तो कुलदीप कौर और प्राण को भगदड़ में लाहौर छोड़ना पड़ा। प्राण की मोटर (जो शायद कुलदीप कौर की संपत्ति थी) यहीं रह गई। लेकिन कुलदीप कौर एक साहसी औरत है। इसके अलावा उसे यह भी ज्ञात है कि वह पुरुषों को अपनी उंगलियों पर नचा सकती है, इसलिए वह कुछ देर के बाद लाहौर आई और दंगों के दौरान वह मोटर चलाकर बंबई ले गई।

जब मैंने मोटर देखी और प्राण से पूछा कि यह कब ख़रीदी गई है, तो उसने मुझे सारी घटना सुनाई कि के० के० लाहौर से लेकर आई है और यह कि रास्ते में उसे कोई कठिनाई और तकलीफ़ नहीं हुई। सिर्फ़ दिल्ली में उसे कुछ रोज़ ठहरना पड़ा, क्योंकि कुछ गड़बड़ हो गई थी।

जब वह मोटर लेकर आई; तो उसने सिखों पर मुसलमानों के तथाकथित अत्याचारों का विवरण सुनाया और वह इस प्रकार कि मालूम होता था कि वह मेज़ पर से मक्खन लगाने की छुरी उठाएगी और मेरे पेट में घोंप देगी। लेकिन मुझे बाद में मालूम हुआ कि वह उस समय भावुक हो गई थी, अन्यथा मुसलमानों से उ[illegible] या द्वेष न था।

उसकी नाक बेहद तीखी [illegible] है, उसके होंठ

हुत बारीक है। यही कारण है कि उसके चेहरे पर तनिक-सा चढ़ाव ी बहुत तेज़ और तुंद बन जाता है। इसके अलावा उसका लहजा और उसकी आवाज भी असाधारण तौर पर तेज व तर्रार है।

कुलदीप कौर की तीखी नाक का उल्लेख मैं कई बार कर चुका हूं। इस सिलसिले में आप एक लतीफ़ा सुन लीजिए।

मैं फ़िल्मिस्तान छोड़कर अपने दोस्त अशोककुमार और सावक वाचा के साथ बंबई टॉकीज चला गया था। उस ज़माने में दंगों का आरंभ हो रहा था। उसी दौरान कुलदीप कौर और उसका 'रखैल' प्राण नौकरी के लिए वहां आए।

प्राण से जब मेरी मुलाक़ात श्याम के माध्यम से हुई, तो मेरी-उसकी तत्काल दोस्ती हो गई। बड़ा बेहूदा आदमी है। कुलदीप कौर से अलबत्ता कुछ रस्मी किस्म की मुलाक़ात रही।

इन दिनों तीन फ़िल्म हमारे स्टुडियो में शुरू होनेवाले थे। अतः जब कुलदीप कौर ने श्री सावक वाचा से भेंट की, तो उन्होंने जोज़फ़ वरशिंग नामक जर्मन कैमरामैन से कहा कि वह उसका कैमरा-टेस्ट ले, ताकि विश्वास हो जाए।

वरशिंग गोरे रंग और अधेड़ उम्र का मोटा-सा आदमी है। उसको स्वर्गीय हिमांशु राय अपने साथ जर्मनी से लाए थे। जब द्वितीय महा-युद्ध शुरू हुआ, तो उसे देवलाली कैंप में नज़रबंद कर दिया गया। वह एक लंबे समय तक वहां रहा। जब जंग खत्म हुई, तो उसे रिहा कर दिया गया और वह वापस बंबई टॉकीज आ गया, इसलिए कि श्री वाचा से उसके मैत्रीपूर्ण संबंध थे, क्योंकि वे बहुत समय पहले बंबई टॉकीज़ में इकट्ठे एक-दूसरे के साथ काम करते रहे थे। उन दिनों श्री वाचा रिकार्डिस्ट थे।

वरशिंग ने स्टूडियो में प्रकाश का प्रबंध कराया और मेकअप-मैन से कहा कि वह कुलदीप कौर को तैयार करके कैमरा-टेस्ट के लिए लाए। वह स्वयं तैयार था। कैमरा नया था। उसको उसने अच्छी तरह देखा। ... कराई और अपना पुरट मुस्काए एक ओर खड़ा हो गया।

कुलदीप कौर आई। मैंने उसे देखा। उसकी नाक पर मेकअप-मैन ने सुर्खी और सफ़ेदे के कुछ ऐसे पुट लगाए थे कि वह दस गुनी और सीधी हो गई थी। जब वरशिंग ने उसे देखा, तो वह घबरा गया, क्योंकि यह विचित्र प्रकार की सीधी नाक थी।

कुलदीप कौर बिलकुल बेडर, बेझिझक कैमरा के सामने खड़ी हो गई। वरशिंग ने उसको अब कैमरे की आंख से देखा, किंतु मैं महसूस कर रहा था कि उसको बड़ी उलझन हो रही है। वह उसकी नाक ऐसे प्वाइंट पर बिठाने का प्रयत्न कर रहा था कि अशोभनीय प्रतीत न हो।

बेचारा इस कोशिश में पसीना-पसीना हो गया। अंत में उसने थक-हारकर मुझसे कहा, "मैं अब एक कप चाय पीऊंगा।"

मैं सारा मामला समझ गया था। अतः हम दोनों कैंटीन में चले गए। वहां उसने अपना पसीना पोंछते हुए मुझसे कहा, "मिस्टर मंटो! उस-की नाक भी एक आफ़त है। कैमरा में घुसी चली आती है। चेहरा बाद में आता है, नाक पहले आती है। मैं क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता।"

फिर उसने एक और उलझन प्रकट की, वह भी मेरे कान में, "मिस्टर मंटो! उसका वह मामला ठीक नहीं है, किंतु मैं उससे यह कैसे कहूं?" और यह कहकर मोटे वरशिंग ने अपने माथे का पसीना पोंछा। मैं उसका मतलब समझ गया। परंतु वरशिंग ने फिर भी मुझे विस्तारपूर्वक सब-कुछ बता दिया और मुझसे प्रार्थना की कि मैं के० के० से अनुरोध करूं कि वह इस मामले को ठीक करे कि यह अत्यावश्यक है। नाक का वह कोई-न-कोई प्वाइंट निकाल लेगा, मगर इस मामले के बारे में वह कुछ भी नहीं कर सकता, यह उसीका काम है। मैंने उसे सांत्वना दी कि मैं सब ठीक कर दूंगा, क्योंकि उसने मुझे इस मामले की दुरुस्ती का हल बता दिया था कि चौंतीस रुपए में 'व्हाइटवे एंड लिडला' की दूकान से वह उपलब्ध हो सकता है।

उस रोज़ टेस्ट किसी बहाने से स्थगित कर दिया गया। कुलदीप जब स्टूडियो से बाहर निकली, तो मैंने स्पष्ट रूप से सारी बातें, जो इस मामले के संबंध में थीं, बता दीं और उससे कहा कि वह आज ही फ़ोर्ट

में जाकर वह चीज़ खरीद ले, जिससे उसके शरीर का नुक्स दूर हो जाएगा। उसने बिना झिझक मेरी बात सुनी और कहा कि यह कौनसी बड़ी बात है ! चुनांचे वह उसी समय प्राण के साथ गई और वह वस्तु खरीद लाई। जब दूसरे दिन स्टूडियो में उससे भेंट हुई, तो ज़मीन और आसमान का अंतर था। वरदिग ने जब उसे देखा, तो वह संतुष्ट था। यद्यपि कुलदीप की नाक उसे तंग कर रही थी, मगर अब दूसरा मामला बिलकुल ठीक था। अतः उसने टेस्ट लिया और जब उसका प्रिंट तैयार हुआ और हम सबने उसे अपने प्रोजेक्शन हॉल में देखा, तो उसके रूप, शक्ल व सूरत को पसंद किया और एकमत से यह राय कायम हुई कि वह विशेष रोल्स के लिए अच्छी रहेगी—विशेषतया वैंप रोल के लिए।

कुलदीप कौर से मुझे अधिक मिलने-जुलने का अवसर नहीं मिला। प्राण चूंकि दोस्त था, उसके साथ अधिकांश शामें गुजरती थीं, इसलिए कुलदीप भी कभी-कभी हमारे साथ शरीक हो जाती थी। वह एक होटल में रहती थी, जो समुद्र-तट के निकट था। प्राण भी उससे कुछ दूर सकवीला में रहता था, जहां उसकी बीवी और बच्चे भी थे। लेकिन उसका अधिक समय कुलदीप कौर के साथ व्यतीत होता था। मैं अब आपको एक दिलचस्प घटना सुनाता हूं।

मैं और श्याम ताज होटल में बीयर पीने जा रहे थे कि रास्ते में प्रसिद्ध संगीतकार मधोक से भेंट हो गई। वह हमें दरोस सिनेमा की बार में ले गए। वहां हम-सब देर तक बीयर पीने में व्यस्त रहे।

जब हम खाली हुए, तो उन्होंने पूछा कि हमें कहां जाना है ? मधोक-साहब को अपनी प्रेयसी निगार सुल्ताना के पास जाना था, जिससे किसी ज़माने में श्याम का भी संबंध था और कुलदीप कौर भी उसके आस-पास ही रहती थी। श्याम ने मुझसे कहा, "चलो, प्राण से मिलते हैं।"

चुनांचे मधोकसाहब की टैक्सी में बैठकर वहां पहुंचे। वह तो अपनी निगार सुल्ताना के पास चले गए और हम दोनों कुलदीप कौर के यहां। प्राण वहां बैठा था। एक मुख्तसर-सा कमरा था। बीयर पी हुई थी। नशा-सा छाया था। नशे के प्रभाव को दूर करने के लिए श्याम ने सोचा

कि ताश खेलनी चाहिए। कुलदीप फ़ौरन तैयार हो गई, लेकिन यह कहा कि फ़्लश खेलेंगे। हम मान गए।

फ़्लश शुरू हो गई। कुलदीप कौर और प्राण एक साथ थे। प्राण ही पत्ते बांटता था। मैं उठाता था और कुलदीप कौर उसके कंधे के साथ अपनी नुकीली ठोड़ी टिकाए बैठी थी और जितने रुपए प्राण जीतता था, उठा-उठाकर अपने पास रख लेती।

इस खेल में हम बिल्कुल हारा किए। मैंने फ़्लाश कई बार खेली है, किंतु यह फ़्लाश कुछ विचित्र प्रकार की थी। मेरे पचहत्तर रुपए पंद्रह मिनट के अंदर-अंदर कुलदीप कौर के पास थे। मेरी समझ में नहीं आता था कि आज पत्तों को क्या हो गया है कि ठिकाने के आते ही नहीं।

श्याम ने जब यह रंग देखा, तो मुझसे कहा, "मंटो, अब बंद करो!"

मैंने खेलना बंद कर दिया। प्राण मुस्कराया और उसने कुलदीप से कहा, "के० के०, पैसे वापस कर दो मंटोसाहब के।"

मैंने कहा, "यह गलत है। तुम लोगों ने जीते हैं। वापसी का सवाल ही कहां पैदा होता है?"

इस पर प्राण ने मुझे बताया कि वह पहले दरजे का चालबाज है। उसने जो कुछ जीता है, अपनी चालाकी की बदौलत मुझसे जीता है। चूंकि मैं उसका दोस्त हूं, इसलिए वह मुझसे धोखा करना नहीं चाहता। मैं पहले समझा कि वह इस बहाने से मेरे रुपए वापस करना चाहता है, किंतु जब उसनें ताश की गड्डी उठाकर तीन-चार बार पत्ते वितरित किए और हर बार बड़े दांव जीतनेवाले पत्ते अपने पास गिराए, तो मैं उसके हथकंडे का लोहा मान गया। यह काम वास्तव में बड़ी चालबाजी का है। प्राण ने फिर कुलदीप कौर से कहा कि वह रुपए वापस कर दे। मगर उसने इन्कार कर दिया। श्याम कबाब हो गया। प्राण नाराज़ होकर चला गया। कदाचित उसे अपनी बीवी के साथ कहीं जाना था। श्याम और मैं वहीं बैठे रहे। थोड़ी देर श्याम उससे बात करता रहा। फिर उसने कहा, "आओ, चलो, सैर करें।"

कुलदीप राज़ी हो गई।

टैक्सी मंगवाई गई। हम-सब बाईकुला रवाना हुए। क्लेयर रोड पर मेरा फ्लैट था। हम सीधे वहां पहुंचे। घर में उन दिनों कोई भी न था। श्याम मेरे साथ रहता था। हमने फ्लैट में प्रवेश किया, तो श्याम ने कुलदीप से छेड़खानी शुरू कर दी। कुलदीप बहुत जल्दी तंग आनेवाली औरत नहीं है। वह किसी मर्द से घबराती नहीं। उसको स्वयं पर पूरा-पूरा भरोसा है। अतः वह देर तक श्याम के साथ हंसती-खेलती रही।

हां, मैं यह बताना भूल गया कि जब हम क्लेअर रोड पर पहुंचे, तो कुलदीप ने गाड़ी रोकने के लिए कहा कि वह सैंट की शीशी खरीदना चाहती है। श्याम क्रोध के मारे जलकर कबाब था कि वह उस रुपए से हर चीज़ खरीदेगी, जो प्राण ने जुएबाज़ी में मुझसे जीते थे। पर मैंने उससे कहा कि कोई हर्ज नहीं। तुम इस बात का कुछ विचार न करो, हटाओ इस किस्से को। कुलदीप के साथ मैं स्टोर में गया। उसने 'यार्डले' का सैंट पसंद किया। उसका मूल्य बाईस रुपए आठ आने था। कुलदीप ने खूबसूरत शीशी अपने पर्स में रखी और मुझसे कहा, "मंटो-साहब, कीमत अदा कर दीजिए!"

मैं इस सैंट के दाम हरगिज भुगतना नहीं चाहता था, मगर दूकानदार मेरा परिचित था और फिर एक औरत ने इस अंदाज़ से मुझसे मूल्य चुकाने के लिए कहा था कि इन्कार करना एक पुरुष के सम्मान के लिए चुनौती होता। अतः मैंने रुपए निकाले और भुगतान कर दिया।

फ्लैट में जब श्याम को मालूम हुआ कि सैंट मैंने खरीदकर दिया है, तो वह आग-बगूला हो गया। उसने मुझे और कुलदीप कौर को पेट भरके गालियां दीं। किंतु बाद में नरम हो गया। उसका उद्देश्य यह था कि कुलदीप किसी-न-किसी तरह मान जाए। मैंने भी कोशिश की और कुलदीप कौर को समझाया कि अब उनके मतभेदों को मिट जाना चाहिए। कुलदीप मान गई। मैंने श्याम और उससे कहा कि मैं जाता हूं, तुम दोनों आपस में फैसला कर लो। मगर उसने कहा कि नहीं, यह समझौता उसके होटल में होगा। टैक्सी नीचे खड़ी थी। दोनों उसमें चले गए।

मैं प्रसन्न था कि चलो, यह किस्सा तय हुआ।

मगर पांच घंटे बाद ही श्याम लौट आया। क्रोध में वह बुरी तरह भरा हुआ था। मैंने उसको ब्रांडी का गिलास पेश किया, तो देखा कि उसका हाथ ज़ख्मी है। खून बह रहा है। मैंने बड़ी चिंता के साथ पूछा, लेकिन वह ख़राब था। ब्रांडी ने उसके मूड को तनिक दुरुस्त कर दिया, तो उसने मुझे बताया कि जब वह के० के० के साथ उसके होटल में पहुचा और वे टैक्सी से बाहर निकले, तो वह (कुलदीप कौर) गाली देकर अनजान और मासूम बन गई। श्याम को सख़्त गुस्सा आया। वे दोनों एक पथरीली दीवार के पास खड़े थे। श्याम ने उससे कहा कि तुम लाहौर में मुझ पर मरती थीं, अब यह क्या नख़रा है ? कुलदीप ने उत्तर में कुछ ऐसी बात कही कि श्याम के तन-बदन में आग लग गई। उसने तानकर घूंसा मारा। किंतु वह एक ओर को हट गई और श्याम का घूंसा दीवार के साथ जा टकराया। वह हंसती, ठहाके लगाती ऊपर होटल में चली गई और श्याम खड़ा अपना घायल हाथ देखता रह गया।

फिर उसने अपनी पतलून की जेब में हाथ डाला और सैंट की शीशी निकाली, "रुपए तो मैं उससे वापस न ले सका, लेकिन यह सैंट की शीशी ले आया हूं।"

कुलदीप कौर अजीबो-गरीब शख़्सियत की मालिक है। जिस तरह उसकी नाक तीखी है, उसी तरह उसका चरित्र और व्यवहार भी तीखा और नुकीला है।

पिछले दिनों यह ख़बर आई थी कि उस पर भारत में पाकिस्तान की जासूस होने का आरोप लगाया गया है। मालूम नहीं, इसमें कहां तक सच्चाई है। परंन्तु मैं विश्वास के साथ इतना अवश्य कह सकता हूं कि उस-जैसी औरत माताहारी कभी नहीं बन सकती, जिसका अंदर और बाहर एक हो, जिसका प्रकट और अप्रकट एक हो। ●

श्याम

अप्रैल की तेईस या चौबीस तारीख़ थी। मुझे अच्छी तरह याद नहीं रहा। पागलखाने में शराब छोड़ने के सिलसिले में मेरी चिकित्सा हो रही थी कि श्याम की मृत्यु का समाचार एक अख़बार में पढ़ा। उन दिनों एक विचित्र-सी कैफ़ियत मुझ पर तारी थी—बेहोशी और नीम-बेहोशी के एक चक्कर में फंसा हुआ था। कुछ समझ में नहीं आता था कि होशमंदी का इलाक़ा कहां से शुरू होता है और मैं बेहोशी की दुनिया में कब पहुंचता हूं। दोनों की सीमाएं कुछ इस प्रकार गड-मड हो गई थीं कि मैं स्वयं को 'नो मैन्स लैंड' में भटकता हुआ महसूस करता था।

श्याम की मौत की ख़बर जब मेरी नज़रों से गुज़री, तो मैंने यह समझा कि यह सब मदिरापान त्यागने का परिणाम है, जिसने मेरे मस्तिष्क में हलचल-सी पैदा कर रखी है। इसके पूर्व स्वप्नावस्था में कई मित्रों और परिचितों की मौतें मेरे लिए हो चुकी थीं और होशमंदी के समय मुझे यह भी मालूम हो चुका था कि वे सब-के-सब जीवित हैं और मेरे स्वास्थ्य-लाभ के लिए ख़ुदा से दुआएं मांग रहे हैं।

मुझे अच्छी तरह याद है। जब मैंने यह ख़बर पढ़ी, तो साथवाले कमरे के पागल से कहा, "जानते हो, मेरा एक बहुत ही नज़दीकी अज़ीज़ दोस्त मर गया है?"

उसने पूछा, "कौन?"

मैंने बुलंद आवाज़ में कहा, "श्याम!"

"कहां? यहां पागलखाने में?"

मैंने कोई उत्तर न दिया। नीचे-ऊपर कई चित्र मेरे विक्षुब्ध दिमाग़ में उभरे, जिनमें श्याम था। मुस्कराता श्याम, हंसता श्याम, शोर मचाता श्याम, जीवन से भरपूर श्याम, मृत्यु और उसकी भयंकरता से बिल्कुल

अलमिश्र और अविभिन्न श्याम ! मंगलोनी, जो कुछ मैंने पढ़ा है, बिल-कुल गलत है—अखबार ने भूल किया होगा !

धीरे-धीरे विक्षिप्तता की धुंध दिमाग से हटने लगी और मैं बीती हुई घटनाओं को उनके वास्तविक रूप से देखने लगा, किन्तु यह सब कुछ इतना धीमा था कि जब मैं श्याम की मौत के दुर्घटनापूर्ण समाचार से परिचित हुआ, तो मुझे जबरदस्त धक्का न लगा। मुझे यों महसूस हुआ कि जैसे वह काफ़ी समय पहले मर चुका था और उसकी मौत का आघात तथा शोक भी अरसा हुआ, मुझे पहुंच चुका था। अब बस उसके आसार बाक़ी थे। सिर्फ़ मलबा रह गया था, आहिस्ता-आहिस्ता जिसकी मैं खुदाई कर रहा था। टूटी-फूटी ईंटों के ढेर में कहीं श्याम की मुस्कराहट दबी हुई मिल जाती थी, कहीं उसका बांका ठहाका !

पागलखाने से बाहर भलेमानुसों की दुनिया में यह मशहूर था कि सआदत हसन मंटो श्याम की मौत की ख़बर सुनकर पागल हो गया है। ऐसा हुआ होता, तो मुझे बहुत अफ़सोस होता। श्याम के देहांत की ख़बर सुनकर मुझे अधिक होशमंद होना चाहिए था, संसार की क्षण-भंगुरता की अनुभूति का एहसास मेरे दिल व दिमाग़ में तीव्रता से हो जाना चाहिए था और प्रतिशोध की भावना के अंतर्गत अपने जीवन को पूर्ण रूप से इस्तेमाल करने का संकल्प मेरे अंदर उत्पन्न हो जाना चाहिए था—श्याम के देहांत की ख़बर सुनकर पागल हो जाना सिर्फ़ पागलपन था !

प्रतिक्रियावादी मान्यताओं और दक़ियानूसी परंपराओं के बुतों को तोड़नेवाले श्याम की मौत पर पागल हो जाना उसकी बहुत बड़ी तौहीन थी, महान अपमान था।

श्याम ज़िंदा है अपने दो बच्चों में, जो उसकी बेलौस अर्थात निःस्वार्थ मुहब्बत का परिणाम है ; ताजी (मुमताज़) में, जो श्याम के कथनानुसार उसकी 'कमज़ोरी' थी ; और ऐसी सभी औरतों में, जिनकी ओढ़नियों के आंचल उसके मुहब्बत-भरे दिल पर यदा-कदा, समय-कुसमय साया करते रहे ; और मेरे हृदय में, जो केवल इसलिए शोक से संतप्त है कि वह उसके महाप्रयाण के सिरहाने नारा बुलंद न कर सका—श्याम ज़िंदाबाद !

मुझे विश्वास है, मौत के होंठों को बड़े प्रेम से चूमते हुए उसने अपने विशेष अंदाज में कहा होगा, "मंटो ! खुदा की कसम ! इन होंठों का मज़ा कुछ और ही है !"

श्याम आशिक और प्रेमी था—इश्क़-पेशा नहीं था। वह हर खूबसूरत और सुंदर चीज पर मरता था—मेरी धारणा है कि मौत अवश्य खूबसूरत होगी, वरना वह कभी नहीं मरता।

उसको हरारत और गरमी से प्यार था। लोग कहते हैं कि मौत के हाथ ठंडे होते हैं। मैं नहीं मानता। श्याम ठंडे हाथों का बिलकुल कायल नहीं था। यदि मौत के हाथ सचमुच ठंडे होते, तो उसने यह कहकर एक तरफ झटक दिए होते, "हटो, बड़ी बी ! तुममें मुहब्बत, गरमी और खुलूस नहीं है !"

मुझे एक पत्र में लिखता है :

"क़िस्सा यह है प्यारे, कि ज़िंदगी खूब गुज़र रही है—काम और मदिरा-पान, मदिरा-पान और काम ! दोनों साथ-साथ चल रहे हैं। ताज़ो (मुमताज) छः महीने के बाद वापस आ गई है। वह अभी तक मेरी एक बहुत बड़ी कमजोरी है। और, तुम जानते हो, नारी के प्रेम का आनंद अनुभव करना कितनी स्फूर्तिदायक और आनंददायक चीज है !···आखिर मैं भी इन्सान हूं—एक नार्मल इन्सान···

"निगार सुल्ताना कभी-कभी मिलती है, लेकिन पहला इक 'सा' था है···

"शामों को तुम्हारी 'विद्वतापूर्ण बकवास' बहुत याद आती है।···"

२९ जुलाई, '४८ के एक पत्र में श्याम मुझे लिखता है :

"प्यारे मंटो ! इस बार तुम फिर खामोश हो। तुम्हारी यह खामोशी मुझे बहुत तंग करती है। इसके बावजूद कि मैं तुम्हारी मानसिक स्थिति और परेशानियों से भली-भांति परिचित हूं, मैं क्रोध में पागल हुए बिना नहीं रह सकता, जबकि तुम लगातार मौन धारण कर लेते हो। इसमें शक नहीं कि मैं भी कोई बहुत बड़ा 'पत्रकार' नहीं हूं, लेकिन मुझे ऐसे

[illegible] लिखने और गाने में बहुत आनंद प्राप्त होता है, जो ज़रा अलग किस्म के हैं।···

"मंटो ! किसीने कहा है, जब प्रेमी के पास शब्द समाप्त हो जाते हैं, तो वह चूमना आरंभ कर देता है और जब किसी वक्ता के पास शब्दों का भंडार ख़त्म हो जाता है, तो वह खांसने लगता है। मैं इस कहावत में एक और चीज शामिल करता हूं, जिस मर्द की मर्दानगी ख़त्म हो जाती है, वह अपने बीते हुए ज़माने को, अतीत को, पलटकर देखने लगता है। लेकिन तुम चिंतित न होना, मैं इस अंतिम स्टेज से कुछ दूर हूं। जीवन बहुत व्यस्त और भरपूर है और भरपूर ज़िंदगी में, तुम जानते हो, पागलपन के लिए बहुत कम फुरसत मिलती है, हालांकि मुझे इसकी नितांत आवश्यकता प्रतीत होती है।···

"नसीमवाला फ़िल्म 'चांदनी रात' क़रीब-क़रीब आधा हो चुका है। अमरनाथ से एक फ़िल्म का कंट्रेक्ट कर चुका हूं। ज़रा सोचो तो, मेरी हीरोइन कौन है ?—निगार ! मैंने ख़ुद उसके नाम का प्रस्ताव किया था—सिर्फ़ यह मालूम करने के लिए कि परदे पर उन पुरानी भावनाओं की पुनरावृति कैसी लगती है, जो कभी किसीसे व्यावहारिक दुनिया में संबंधित रही हों—पहले प्रसन्नता और संतोष था, अब केवल कारोबार। लेकिन क्या ख़याल है तुम्हारा, यह सिलसिला उत्साहवर्द्धक नहीं रहेगा ?

"ताज़ी अभी तक मेरी ज़िंदगी में है। निगार बहुत ही अच्छी है और उसका व्यवहार बहुत ही नरम और नाज़ुक—कोमलता से परिपूर्ण। पिछले कुछ दिनों से रमोला भी यहीं बंबई में मौजूद है। उससे भेंट करने पर मुझे पता चला कि वह अभी तक उस कमज़ोरी को, जो उसके दिलो दिमाग़ में मेरी ओर से मौजूद है, दूर न कर सकी है। अत: उसके साथ भी सैर व तफ़रीह रही।

"ओल्ड ब्वाय ! मैं इन दिनों फ़्लर्टेशन की कला में एडवांस ट्रेनिंग ले रहा हूं। मगर, दोस्त, यह सारा सिलसिला बहुत पेचीदा हो गया है ! बहरहाल, मैं पेचीदगियां पसंद करता हूं।

"वह मेरे अंदर जो जुएबाजी और आवारागर्दी के गुण हैं, वे अभी तक पर्याप्त शक्तिशाली हैं। मैं किसी विशेष स्थान का नहीं हूं और न किसी खास जगह का होना चाहता हूं। जिंदगी यों ही गुजर रही है। वास्तव में जीवन ही एक प्रेयसी है, एक प्रेमिका है, जिससे मुझे मुहब्बत है—लोग जाएं जहन्नुम में !

"मैं लेखक का नाम भूल गया हू, मगर उसका एक वाक्य याद रह गया है, शायद वह भी दुरुस्त न हो। लेकिन अभिप्राय कुछ इस प्रकार का था—वह लोगों से इस कदर मुहब्बत करता था कि (स्वयं को प्रेम करने में) कभी अकेला महसूस नहीं करता था, लेकिन वह इस तौर पर उनसे घृणा करता था (स्वयं को घृणा करने में) कि अकेला महसूस करता था।

"मैं इसमें और कोई वाक्य शामिल नहीं कर सकता।"

इन दो पत्रों में ताजी का जिक्र आया है। अपने पिछले लेख में इतना तो मैं बता चुका हू कि यह (ताजी) मुमताज की तसगीर (छोटा नाम) है। मुमताज कौन है, यह खुद श्याम बता चुका है कि वह उसकी 'कमजोरी' है। सच पूछिए, तो निगार, रमोला, सब उसकी 'कमजोरियां' थीं। नारी दरअसल उसकी सबसे बडी कमजोरी थी और यही उसके चरित्र का दृढ़तम पहलू भी थी।

मुमताज जैब कुरैशी, एम० ए०, की छोटी बहन है। जैब के साथ बंबई गई, तो वहां जहूर राजा के भारी-भरकम इश्क में फंस गई। कुछ समय बाद उससे अपना दामन छुडाकर लाहौर आई, तो श्याम के साथ रोमांस शुरू हो गया। बबई में जब श्याम की आर्थिक अवस्था अच्छी हो गई, तो उसने अपने होनेवाले बच्चों की खातिर मुमताज से शादी कर ली।

श्याम को बच्चों से बहुत प्यार था—खास तौर पर खूबसूरत बच्चों से, चाहे वे बदतमीज ही क्यों न हों। नफासतपसंद लोगों की दृष्टि

डायमंड को हस्पताल में दाखिल कराना पड़ा, तो उसने रजिस्टर में उसका नाम श्रीमती श्याम ही लिखवाया ।

बहुत देर बाद डायमंड के पतिदेव ने मुकद्दमेबाज़ी की । श्याम को भी इसमें फंसाया गया, लेकिन मामला ऐसे ही इधर-उधर हो गया और डायमंड, जो अब फिल्मी दुनिया में पैर रख चुकी थी और बजनी और भारी जेबें देख चुकी थी, श्याम के जीवन से निकल गई । लेकिन श्याम उसको बहुत याद करता था ।

मुझे याद है, पूना के एक बाग में उसने मुझे सैर कराते हुए कहा, "मंटो ! डायमंड ग्रेट औरत थी ! "खुदा की कसम ! जो गर्भपात करवा सकती है, वह संसार की सबसे बड़ी कठिनाई और मुसीबत का सामना कर सकती है ।" लेकिन फौरन ही उसने कुछ सोचकर कहा, "यह क्या बात है, मंटो ! औरत फलफूल से क्यों डरती है ? क्या उसके लिए यह पाप का फल होना है ? लेकिन यह गुनाह और सवाब पाप और पुण्य की बकवास क्या है ? एक करेंसी नोट जाली या असली हो सकता है, एक बच्चा हराम का या हलाल का नहीं हो सकता । वह झटका या कलमा पढ़कर छुरी फेरने से पैदा नहीं होता । उसकी पैदाइश का कारण तो वह जबरदस्त पागलपन है, जिसके शिकार सबसे पहले बाबा आदम और मां हव्वा हुए थे । आह, यह पागलपन !"

और वह देर तक तरह-तरह के पागलपनों की बातें करता रहा ।

श्याम बहुत बुलंद-बांग—ऊंचा बोलनेवाला था । उसकी हर बात उसकी हर हरकत, उसकी हर अदा ऊंचे स्वरों में होती थी । गंभीरता और संतुलन का वह बिलकुल क़ायल न था । महफिल में सर्जीदगी व शराफत की टोपी पहनकर बैठना उसके नज़दीक मसखरापन था । मदिरा-पान के दौरान विशेष रूप से यदि कोई खामोश हो जाता या दार्शनिक बन जाता तो उसे बहुत कोफ्त होती । इतना झुंझला जाता कि किसी समय तो बोतल और गिलास तोड़कर गालियां देता, महफिल से बाहर चला जाता ।

पूना की एक घटना है । श्याम और मसऊद परवेज़ दोनों जुबैदा

पूना की सड़कें सुनसान और जनशून्य थी। मैं, मसऊद, श्याम तथा एक अन्य सज्जन, जिनका नाम मुझे याद नही रहा, पागलों की भांति शोर मचाते दौड रहे थे। बिलकुल बेमतलब अपने लक्ष्य से अनभिज्ञ !

रास्ते में कृशनचंदर का मकान पड़ता था। वह दौड़ से पहले हमसे अलग होकर चला गया था। दरवाज़ा खुलवाकर हमने उसे बहुत तग और परेशान किया। उसकी सलीमा खातून हमारा शोर सुनकर दूसरे कमरे से बाहर निकल आई। इससे कृशन और भी ज़्यादा परेशान हुआ और इस बात को देखते हुए हमने उससे विदा ली और फिर सडक नापनी आरभ कर दी।

इसी तरह तीन बज गए। एक सडक पर खड़े होकर मसऊद ने वे खुराफातें बकी कि मैं दंग रह गया, क्योकि उसकी ज़बान से मैंने कभी इस तरह की बाते नही सुनी थी। मगर जब वह मोटी-मोटी गालिया उगल रहा था, तो मैंने महसूस किया कि वे उसकी ज़बान पर ठीक तौर पर बैठती नही है।

चार बजे हम ज़ुबैदा कॉटेज पहुचे और सो गए। लेकिन मसऊद शायद जागता रहा और कविता-पाठ करता रहा था।

मदिरा-पान के मामले में भी श्याम यथास्थितिवादी अथवा सकुचित मनोवृति का नहीं था। वह उन्मुक्त रीति से खुल खेलने का कायल था। मगर अपने सामने मैदान की 'कैपेसिटी' देख लेता था, उसकी लबाई-चौडाई को अच्छी तरह जाच लेता था, ताकि सीमा से आगे न निकल जाए। वह मुझसे कहा करता था, "मै चौक्के पसद करता हू, छक्के केवल सयोग से लग जाते हैं!"

छक्के की एक बानगी देखिए:

देश का बटवारा होने से कुछ महीने पहले का ज़िक्र है। श्याम शाहिद लतीफ के घर से मेरे यहा चला आया था। बबई की भाषा में कड़की यानी मुफलिसी और तंगदस्ती के दिन थे। मगर मदिरा-पान

निद्रा की स्थिति में यों महसूस हुआ कि मेरे साथ कोई लेटा है।
…ते मैंने खयाल किया कि बीबी है। मगर वह तो लाहौर में बैठी थी!
…खें खोलकर देखा, तो ज्ञात हुआ कि श्याम है। अब मैंने सोचना शुरू
…या कि यह कैसे मेरे पास पहुंच गया? अभी मैं सोच ही रहा था
…जले हुए कपड़े की बू नाक में घुसी। पास ही सोफा पड़ा था।
…रखा हुआ, सिगरेट गिरने से उसका एक भाग जल गया था, लेकिन
…तनी देर के बाद अब बू आने का क्या मतलब है? आंखें अधिक खुलीं,
…तो मैंने धुएं की कड़वाहट महसूस की और हल्के-हल्के दूधिया बादल
…भी देखे। उठकर मैं दूसरे कमरे में गया। क्या देखता हूं कि पलंग पर
…राजा मेहदी अली खां अपनी तोंद निकाले खर्राटे भर रहा है।

…मैंने नजदीक जाकर पलंग के जले हुए भाग का निरीक्षण किया।
…टेयर्न में बड़ी थाली के बराबर सूराख था, जिसमें से धुआं निकल रहा
था। ऐसा मालूम होता था कि किसीने आग बुझाने का प्रयत्न किया है,
क्योंकि पलंग पानी से तर था। मगर मामला चूंकि रुई और नारियल
के फूस का था, इसलिए आग बुझी नहीं थी और बराबर सुलग रही थी।
मैंने राजा को जगाने की कोशिश की, मगर वह करवट बदलकर और
जोर से खर्राटे लेने लगा। यकायक पलंग के काले छेद से एक लाल-लाल
शोला बाहर लपटा। मैं फौरन गुसलखाने की तरफ भागा। एक बाल्टी
पानी उस सुराख में डाला। और जब पूरी तरह संतोष हो गया कि आग
बुझ गई, तो राजा को झिंझोड़-झिंझोड़कर जगाया। उससे जब अग्नि-
कांड के बारे में पूछा, तो उसने अपनी विशेष रीति से मजाकिया अन्दाज
में खूब नमक-मिर्च लगाकर घटनाएं सुनाईं:

"तुम्हारा यह श्याम रात ब्रांडी के तालाब में गोता लगाते हुए सो गया। दो बजे के क़रीब जब अजीब-अजीब आवाजें आईं, तो मैं जाग पड़ा। क्या देखता हूं कि श्याम पलंग पर जोर-जोर से उछल-कूद रहा है और आग लगा रहा है। जब आग लग गई, तो मैंने आंखें बंद कर ली और

ब्रांडी के सैलाब में गोता लगा गया। सतह के साथ लगकर सोने ही वाला था कि मुझे तुम्हारा ध्यान आया कि ग़रीब आदमी का पलंग ऐसा न हो कि जलकर राख हो जाए। अतः उठा। श्याम ग़ायब था। दूसरे कमरे में तुम्हें हालात से आगाह करने गया, तो यह देखता हूं कि श्याम तुम्हारे साथ चिपटकर लेटा है। मैंने तुम्हें जगाने का प्रयत्न किया। अपने फेफड़ों पर जोर लगा-लगाकर तुम्हें पुकारा। घंटे बजाए, एटम बम चलाए, मगर तुम न उठे। अंत में मैंने होले-होले तुम्हारे कान में कहा, 'ख़्वाजा, उठो! स्काच ह्विस्की की एक पूरी पेटी आई है!' तुमने फ़ौरन आंखें खोल दीं और पूछा, 'कहां, ?' मैंने कहा, 'होश में आओ, सारा मकान जल रहा है—आग लग गई है!' तुमने कहा, 'बकते हो।' मैंने कहा, 'नहीं ख़्वाजा, मैं ख़्वाजा ख़िज्र की क़सम खाकर कहता हूं, आग लगी है!'

जब तुम्हें मेरे बयान पर विश्वास आ गया, तो तुम आराम से यह कहते हुए सो गए कि फ़ायर ब्रिगेड को इत्तला कर दो। तुम्हारी तरफ़ से मायूस होकर मैंने श्याम को परिस्थिति की गंभीरता से आगाह कराने की कोशिश की। जब वह इस लायक़ हुआ कि मेरी बात उसके दिमाग़ तक पहुंच सके, तो उसने मुझसे कहा, 'तुम बुझा दो न, यार! क्यों तंग करते हो?' और कमबख़्त सो गया।···आग आख़िर आग है, और उसको बुझाना हर मनुष्य का कर्तव्य है। इसलिए मैं फ़ौरन अपनी सारी इन्सानियत को एकजुट करके फ़ायर ब्रिग्रेड बन गया और वह जग, जो मैंने तुम्हारी वर्षगांठ पर तुम्हें भेंट में दिया था, भरकर आग पर डाल दिया। मेरा काम पूरा हो चुका था—नतीजा ख़ुदा के हाथ सौंपकर सो गया।"

श्याम जब पूरी नींद सोकर उठा, तो मैंने और राजा ने उससे पूछा कि आग कैसे लगी थी? श्याम को यह क़तई मालूम नहीं था। बहुत देर तक सोचने के बाद उसने कहा, "मैं आगज़नी की इस घटना पर कोई प्रकाश नहीं डाल सकता।" मगर जब राजा दूसरे कमरे से श्याम की जली हुई कमीज़ उठाकर लाया, तो श्याम ने मुझसे कहा,

"अब जांच करनी ही पड़ेगी।"

सबने मिलकर इन्क्वायरी की, तो मालूम हुआ कि श्यामसाहब ने जो अंडरशर्ट पहनी थी, वह भी दो-एक जगह से जली हुई है। अधिक गहराई में गए, तो देखा कि उनकी छाती पर रुपए-रुपए जितने दो बड़े आबले हैं। अतः शरलाक होम्स ने अपने मित्र वाटसन से कहा, "यह बात निश्चित रूप से प्रमाणित हो चुकी है कि आग अवश्य लगी थी और श्याम केवल इस उद्देश्य से कि उसके पड़ोसी राजा मेहदी अली खां को कोई तकलीफ न हो, चुपचाप उठकर मेरे पास चला आया।"

जब श्याम ने शिष्टता और सभ्यता के नियमों की खातिर ताजी से बाकायदा शादी की, तो मेरा विचार है कि केवल एक प्रतिशोध की भावना के अंतर्गत उसने इतनी शानदार दावत की कि देर तक फ़िल्मी दुनिया में इसकी चर्चा रही। इतनी शराब बहाई गई कि सब-के-सब खाली हो गए। मगर अफ़सोस कि शिष्टता और सभ्यता की दागदार चोली के दाग धुल न सके!

श्याम सिर्फ़ बोतल और औरत का ही रसिया नहीं था। जीवन में जितनी नियामतें, जितनी सुंदर वस्तुएं उपलब्ध हैं, वह उन सबका आशिक था। अच्छी पुस्तक से भी वह उसी तरह प्यार करता था, जिस प्रकार एक अच्छी औरत से करता था। उसकी मां उसके बचपन ही में मर गई थी, मगर उसको अपनी सौतेली मां से भी वैसा ही प्रेम था, जो वास्तविक मां से हो सकता था। उसके छोटे-छोटे सौतेले भाई-बहन थे। इन-सबको वह अपनी जान से अधिक प्रिय समझता था। बाप की मृत्यु के बाद सिर्फ़ उसकी सौतेली मां थी, जो इतने बड़े परिवार की देख-भाल करती थी।

एक समय तक वह बड़ी तन्मयता के साथ दौलत और शोहरत प्राप्त करने के लिए हाथ-पांव मारता रहा। इस बीच भाग्य ने उसे कई दफ़्े

दिए। मगर वह हंसता रहा—प्यारी ! एक दिन ऐसा भी आएगा कि तू मेरी वग़ल में होगी ! और कई वरसों के वाद वह दिन आ ही गया कि दौलत और शोहरत दोनों उसकी जेव में थीं।

मौत से पहले उसकी आमदनी हज़ारों रुपए माहवार थी। वंवई के वाहर एक ख़ूवसूरत वंगला उसकी संपत्ति था। और कभी वे दिन थे कि उसके पास सिर छिपाने को जगह नहीं थी। किंतु ग़रीवी और मुफ़लिसी के इन दिनों में भी वह हंसता हुआ प्रसन्न श्याम था। दौलत और शोहरत आई, तो उसने उनका यों स्वागत न किया, जिस तरह लोग डिप्टी कमिश्नर या मिनिस्टर का करते हैं। ये दोनों श्रीमतियां उसके पास आईं, तो उसने इनको भी अपनी लोहे की चारपाई पर विठा लिया और गरम-गरम चुंवन लिए !

मैं और वह जव एक छत के नीचे रहते थे, तो दोनों की हालत पतली थी। फिल्म इंडस्ट्री देश की राजनीति की तरह एक वड़े ही नाज़ुक दौर से गुज़र रही थी। मैं वंवई टॉकीज़ में मुलाज़िम था। उसका वहां एक पिक्चर का कांट्रेक्ट था, दस हजार रुपए में। काफ़ी दिनों की वेकारी के वाद उसको यह काम मिला था। लेकिन समय पर पैसे नहीं मिलते थे। वहरहाल, हम दोनों का निर्वाह किसी-न-किसी प्रकार हो ही जाता था। मियां-वीवी होते, तो उनमें भी रुपए-पैसे के मामले में ज़रूर वाक्-युद्ध होता, मगर श्याम और मुझे कभी महसूस तक न हुआ कि हममें से कौन खर्च कर रहा है और कितना खर्च कर रहा है।

एक दिन उसे वड़ी कोशिशों के वाद एक मोटी-सी रक़म मिली (शायद पांच सौ रुपए थे)। मेरी जेव खाली थी। हम मलाड से घर आ रहे थे। रास्ते में श्याम का यह प्रोग्राम वन गया कि वह चर्च गेट किसी दोस्त से मिलने जाएगा। मेरा स्टेशन आया, तो उसने जेव से दस-दस रुपए के नोटों की गड्डी निकाली। आंखें मूंदकर उनके दो हिस्से किए और मुझसे कहा, "जल्दी करो, मंटो, इनमें से एक ले लो !"

मैंने गड्डी का एक हिस्सा पकड़कर जेव में डाल लिया और प्लेट-फ़ार्म पर उतर गया। श्याम ने मुझे टा-टा कहा और कुछ नोट जेव से

निकालकर लहराए, "तुम भी क्या याद रखोगे ! हिफाज़त की खातिर मैंने ये नोट अलग रख दिए थे—आदाब !"

शाम को जब वह अपने दोस्त से मिलकर आया, तो गुस्से में जल-कर कबाब हो रहा था। प्रसिद्ध फ़िल्म-स्टार के० के० ने उसको बुलाया था कि वह उससे एक प्राइवेट बात करना चाहती है। श्याम ने ब्रांडी की बोतलें बगल में से निकालकर और गिलास में एक बड़ा पेग डालकर मुझसे कहा, "प्राइवेट बात यह थी कि मैंने लाहौर में एक बार किसीसे कहा था कि के० के० मुझ पर मरती है। ख़ुदा की कसम, बहुत बुरी तरह मरती थी ! लेकिन उन दिनों मेरे दिल में उसके लिए कुछ गुंजाइश नहीं थी। आज मुझे अपने घर पर बुलाकर कहा कि तुमने बकवास की थी, मैं तुम पर कभी नहीं मरी। मैंने कहा तो आज मर जाओ ! मगर उसने हठधर्मी से काम लिया और मुझे गुस्से में आकर उसके एक घूसा मारना पड़ा।"

मैंने उससे पूछा, "तुमने एक औरत पर हाथ उठाया ?"

श्याम ने मुझे अपना हाथ दिखाया, जो घायल हो रहा था, "कम-बख्त आगे से हट गई ! निशाना चूका और मेरा घूसा दीवार के साथ जा टकराया !"

यह कहकर वह ख़ूब हँसा, "साली बेकार तंग कर रही है !"

मैंने ऊपर रुपए-पैसे की चर्चा की है। लगभग दो बरस पीछे की बात है। मैं वहां लाहौर में फ़िल्म-उद्योग की शोचनीय दशा और अपनी कहानी 'ठंडा गोश्त' के मुक़द्दमे के कारण बहुत परेशान था। अदालत-मानहत ने मुझे अपराधी ठहराकर तीन महीने के कठोर कारावास और तीन सौ रुपए जुरमाने की सजा दी थी। मेरा दिल इस क़दर खट्टा हो गया था कि जी चाहता था कि अपनी समस्त साहित्यिक कृतियों को आग में झोंक दूं और और कोई धंधा शुरू कर दूं, जिसका नैतिकता से कोई संबंध न हो, जिस पर क़ानून के दावेदार, शांति और व्यवस्था के ठेके-

वार कोई प्रहार न कर सकं—चुंगी-विभाग में नौकर हो जाऊं और रिश्वत खाकर अपना और अपने बच्चों का पेट पाला करूं—न किसीकी आलोचना या किसी पर नुक़्ताचीनी करूं, न किसी मामले में अपनी राय दूं।

एक अजीबो-ग़रीब दौर से मेरा दिलो-दिमाग़ गुज़र रहा था। कुछ लोग समझते थे कि कहानियां और अफ़साने लिखकर उन पर मुक़द्दमे चलवाना मेरा ख़ानदानी पेशा है। कुछ कहते थे, मैं सिर्फ़ इस-लिए लिखता हूं कि सस्ती ख्याति प्राप्त करने का भूखा हूं और लोगों की भावनाएं भड़काकर अपना उल्लू सीधा करता हूं। मुझ पर चार मुक़द्दमे चल चुके हैं। इन चार उल्लुओं को सीधा करने में जो ख़म मेरी कमर में पैदा हुआ, उसको कुछ मैं ही जानता हूं!

आर्थिक स्थिति कुछ पहले ही कमज़ोर थी। आस-पास के वाता-वरण ने जब निकम्मा, निष्क्रिय और पस्तहिम्मत कर दिया, तो आमदनी के सीमित साधन और भी संकुचित हो गए।

इस ज़माने में मेरा किसीसे पत्र-व्यवहार नहीं था। वास्तव में मेरा दिल बिलकुल उचाट हो चुका था। अकसर घर से बाहर रहता और अपने शराबी दोस्तों के घर पड़ा रहता, जिनका साहित्य और कला से दूर का भी नाता नहीं था। उनकी सोसाइटी में रहकर, उनकी घिनौनी संगत में रहकर शारीरिक और आध्यात्मिक आत्महत्या के प्रयत्नों में व्यस्त था।

एक दिन मुझे किसी और के घर के पते से एक ख़त मिला। 'तह-सीन पिक्चर्स' के मालिक की ओर से था। लिखा था कि मैं फ़ौरन मिलूं। बंबई से उन्हें मेरे बारे में कोई हिदायत प्राप्त हुई है। केवल यह मालूम करने के लिए कि हिदायत भेजनेवाला कौन महापुरुष है, मैं तहसीन पिक्चर्सवालों से मिला। ज्ञात हुआ कि बंबई से उन्हें श्याम के एक-के-बाद-एक तार मिले हैं कि मुझे ढूंढकर पांच सौ रुपए दे दिए जाएं। मैं जब दफ़्तर पहुंचा, तो वे श्याम के ताज़े ताक़ीदी तार का जवाब लिख रहे थे कि काफ़ी ढूंढ-खोज करने के बावजूद उन्हें मंटो नहीं

सका है!

मैंने रुपए ले लिए और मेरी मखमूर आंखों में आंसू आ गए। मैंने कोशिश की कि श्याम को पत्र लिखकर धन्यवाद दे दूं और पूछूं उसने मुझे रुपए क्यों भेजे थे? क्या उसको मालूम था कि मेरी थक स्थिति कमजोर है? इस उद्देश्य से मैंने कई पत्र लिखे और फाड़ । ऐसा महसूस हो रहा था कि मेरे लिखे हुए शब्द श्याम की उस ना का मुंह चिढ़ा रहे हैं, जिसके प्रभाव में उसने मुझे ये रुपए थे।

पिछले साल जब श्याम अपनी निजी फिल्म के प्रदर्शन के सिलसिले अमृतसर आया, तो थोड़ी देर के लिए लाहौर भी आ गया। यहां ने बहुत-से लोगों से मेरा अता-पता पूछा। परन्तु उसी बीच खुश-स्मती से मुझे भी मालूम हो गया कि श्याम लाहौर में आया हुआ है। उसी समय दौड़ा हुआ उस सिनेमा में जा पहुंचा, जहां वह एक दावत कर आ रहा था।

मेरे साथ रशीद अत्रे थे—श्याम के पूना के पुराने मित्र। जब उसकी टर ने सिनेमा के सहन में प्रवेश किया, तो श्याम ने मुझे और रशीद ो देख लिया और एक जोर का नारा उसने बुलंद किया। उसने ड्राइ-र से मोटर रोकने के लिए बहुत कहा, लेकिन उसके स्वागत के लिए तनी अधिक भीड़ थी कि ड्राइवर न रुका। मोटर से निकलकर पुलिस ी सहायता से श्याम और ओम्, एक ही तरह का लिबास पहने और पर पर सफेद पनामा हैट लगाए, सिनमा के अंदर पिछले दरवाजे से ाखिल हुए। बड़े दरवाजे से हम अंदर पहुंचे। श्याम वही श्याम था—मुस्कराता, हंसता और ठहाके लगाता श्याम!

दौड़कर वह हम दोनों से लिपट गया। फिर इतना अधिक शोर मचा कि हममें से कोई भी काम की बात, मतलब की बात न कर सका। ऊपर-तले इतनी बातें हुईं कि अंबार लग गए और हम उनमें दबकर

रह गए। सिनेमा से फ़ारिग़ होकर उसे एक फ़िल्म डिस्ट्रीब्यूटर के दफ़्तर में जाना था। हमें भी अपने साथ ले गया। यहां जो बात भी होती, फ़ौरन कट जाती। लोग धड़ाधड़ आ रहे थे। नीचे बाज़ा जन-समूह शोर मचा रहा था कि श्याम दर्शन देने के लिए बाहर व कनों में आए!

श्याम की स्थिति विचित्र थी। उसको लाहौर में अपनी उपस्थि का तीव्र अहसास था—इस लाहौर में, जिसकी कई सड़कों पर उ रूमानों, उसके रोमांसों और उसकी मुहब्बत के छींटे बिखरा करते इस लाहौर में, जिसकी दूरी अब अमृतसर से हज़ारों मील हो गई थ और श्याम का रावलपिंडी कहां था, जहां उसने अपने लड़कपन के गुज़ारे थे? लाहौर, अमृतसर और रावलपिंडी—सब अपनी-अपनी ज पर यथास्थान थे, मगर वे दिन नहीं थे, वे रातें नहीं थीं, जो श्याम य छोड़कर गया था! राजनीति के कफ़नखसोटों ने उन्हें न मालूम क दफ़न कर दिया!

श्याम ने मुझसे कहा, "मेरे साथ रहो।"

किंतु उसके दिल-व-दिमाग़ की बेचैनी की अनुभूति ने मुझे बहुत खिन्न कर दिया। उससे यह वायदा करके कि रात को उससे फ़्लैटी होटल में मिलगा, मैं चला गया।

श्याम से इतने दिनों के बाद भेंट हुई थी, मगर प्रसन्नता के बजा एक अजीब घुटन-सी महसूस हो रही थी। मन में इतनी अधिक झुंझ लाहट थी कि जी चाहता था किसीसे ज़बरदस्त लड़ाई हो जाए, ख़ू मार-कटाई हो और मैं थककर सो जाऊं। इस घुटन का विश्लेषण किय तो कहां-का-कहां पहुंच गया—एक ऐसी जगह, जहां विचारों के सा धागे बुरी तरह आपस में उलझ गए। इससे तबीयत और भी झुंझल गई और फ़्लैटीज़ में जाकर मैंने एक दोस्त के कमरे में पीनी शुर कर दी।

नौ-साढ़े नौ के क़रीब शोर सुनने पर मालूम हुआ कि श्याम अ गया है। उसके कमरे में मिलनेवालों की वैसी ही भीड़ थी। थोड़ी देर

बैठा, लेकिन खुलकर बात नहीं हुई। ऐसा मालूम होता था कि दोनों की भावनाओं में ताले लगाकर चाबियां किसीने एक बहुत गुच्छे में पिरो दी हैं, हम दोनों उस गुच्छे में से एक-एक चाबी ...कर ये ताले खोलने का प्रयत्न करते और असफल रहते थे।

मैं ऊबता गया। डिनर के बाद श्याम ने बड़े भावुक ढंग का भाषण ...ा, मगर मैंने उसका एक शब्द तक न सुना। मेरा अपना दिमाग बड़े ...स्वरों में जाने क्या बक रहा था। श्याम ने अपनी बकवास खत्म ...तो लोगों ने भरे पेट के साथ तालियां पीटीं। मैं उठकर कमरे में ...आ गया। वहां फ़ज़ली बैठे थे। उनसे एक साधारण बात पर खट-पट ...गई। श्याम आया, तो उसने कहा, "ये सब लोग हीरामंडी जा रहे ...। चलो, आओ, तुम भी चलो।"

मैं क़रीब-क़रीब रो दिया, "मैं नहीं जाता, तुम जाओ और तुम्हारे लोग जाएं!"

"तो मेरा इंतज़ार करो—मैं अभी आता हूं।"

यह कहकर श्याम हीरामंडी जानेवाली पार्टी के साथ चला गया। ...ने श्याम को और फ़िल्म-उद्योग से संबंधित तमाम लोगों को ...टी-मोटी गालियां दीं। फ़ज़ली से कहा, "मेरा ख़याल है, आप तो ...हा इंतज़ार करेंगे। अगर तकलीफ़ न हो, तो मेहरबानी करके अपनी ...टर में मुझे मेरे घर तक छोड़ आइए।"

रात-भर ऊट-पटांग सपने देखता रहा। श्याम से कई बार लड़ाई ...ई। सुबह दूधवाला आया, तो मैं खोखले गुस्से में उससे कह रहा था, तुम बिलकुल बदल गए हो!···उल्लू के पट्ठे! कमीने! ज़लील! ...तुम हिंदू हो!"

नींद खुली, तो मैंने महसूस किया कि मेरे मुंह से एक बहुत बड़ी गाली निकल गई है। किंतु जब मैंने अपने को अच्छी तरह टटोला, तो विश्वास हो गया कि यह मेरा मुंह नहीं था—राजनीति का भोंपू था,

[जि]समें वह पानी मिलाती थी। इसके विषय में सोचते हुए मैंने दूधवाले से पूछ लिया, जिसमें एक चौथाई पानी था। इस विचार ने मुझे बड़ी राहत दी कि श्याम हिंदू था, मगर पानी-मिला हिंदू नहीं था।

कई दिन बीत चुके। जब देश-विभाजन पर हिंदू-मुसलमानों में खूंरेज़ जंग जारी थी और दोनों ओर के हज़ारों आदमी रोज़ाना मरते थे, श्याम और मैं रावलपिंडी से भागे हुए एक सिख-परिवार के पास बैठे थे। उस कुनबे के व्यक्ति अपने ताज़ा ज़ख्मों की कहानी सुना रहे थे, जो बहुत ही दर्दनाक थी। श्याम प्रभावित हुए बिना न रह सका। वह हलचल, जो उसके मस्तिष्क में मच रही थी, उसको मैं अच्छी तरह समझता था। जब हम वहां से विदा हुए, तो मैंने श्याम से कहा, "मैं मुसलमान हूं। क्या तुम्हारा जी नहीं चाहता कि मेरी हत्या कर दो?"

श्याम ने बड़ी संजीदगी से उत्तर दिया, "इस समय नहीं···लेकिन उस समय, जब मैं मुसलमानों द्वारा किए गए अत्याचारों की दास्तान सुन रहा था, तुम्हें क़त्ल कर सकता था!"

श्याम के मुंह से यह सुनकर मेरे हृदय को ज़बरदस्त धक्का लगा। इस समय शायद मैं भी उसे क़त्ल कर सकता—किंतु बाद में जब मैंने सोचा और उस समय और बाद के विचारों में मैंने धरती व आकाश का अंतर अनुभव किया, तो इन दंगों का मनोवैज्ञानिक पहलू मेरी समझ में आ गया, जिसमें नित्य सैंकड़ों निरपराध हिंदू और बेगुनाह मुसलमान मौत के घाट उतारे जा रहे थे।

इस समय नहीं।···उस समय हां।—क्यों? आप सोचिए, तो आपको इस 'क्यों' के पीछे मनुष्य की प्रकृति और मानव-स्वभाव म इस प्रश्न का सही उत्तर मिल जाएगा।

बंबई में भी सांप्रदायिक तनातनी दिन-प्रति-दिन बढ़ती चली जा रही थी। बंबई टॉकीज़ की प्रबंध-व्यवस्था जब अशोक और वाचा ने संभाली, तो बड़े-बड़े पद संयोग से मुसलमानों के हाथों में चले गए। इससे बंबई टॉकीज़ के हिंदू स्टाफ़ में घृणा और क्रोध की लहर दौड़ गई। वाचा को गुमनाम पत्र प्राप्त होने लगे, जिनमें स्टूडियो को आग

मरने-मारने की धमकियां होती थीं—अशोक और वाचा धमकियों की कोई परवाह नहीं थी, किंतु मैं कुछ दूरदर्शी होने के कारण स्थिति की गंभीरता को बहुत अधिक था। कई बार मैंने अशोक और वाचा से अपनी चिंता उनको राय दी कि वे मुझे बंबई टॉकीज से अलग कर यह समझते थे कि केवल मेरे कारण मुसलमान वहां हैं। मगर उन्होंने कहा कि मेरा दिमाग खराब है!

वास्तव में खराब हो रहा था। बीबी-बच्चे पाकिस्तान भारत का एक भाग था, तो मैं उसे जानता था। उसमें -मुस्लिम दंगे होते रहते थे, मैं उनसे भी परिचित था। को नए नाम 'पाकिस्तान' ने क्या बना दिया था, नहीं था।

१९४७ का दिन मेरे सामने बंबई में मनाया गया। भारत, दोनों देश स्वतंत्र घोषित किए गए थे। लोग मगर कत्ल और आग की वारदातें बाकायदा जारी थीं। जय के साथ-साथ पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे के तिरंगे के साथ इस्लामी परचम भी लहराता था। नेहरू और कायदे आजम मोहम्मद अली जिन्ना— में गूंजते थे। समझ में नहीं आता था कि भारत या पाकिस्तान अपना वतन और वह लहू किसका है, से बहाया जा रहा है...वे हड्डियां कहां दफन की जाएंगी, जिन पर से मजहब और धर्म का गिद्ध नोंच-नोंचकर खा गए थे? अब कि हम आजाद लाभ कौन होगा?—जब गुलाम थे, तो स्वतंत्रता की थे। अब स्वतंत्र हैं, तो गुलामी की कल्पना, उसकी ? लेकिन प्रश्न ... है

[illegible] रहे थे—इन प्रश्नों के उत्तर भी भिन्न-भिन्न थे—भारतीय उत्तर, पाकिस्तानी जवाब, अंग्रेज़ी आन्सर। हर सवाल का जवाब मौजूद था। मगर इस फसाद में वास्तविकता तलाश करने का सवाल पैदा होता, तो उसका कोई उत्तर न मिलता। कोई कहता, इसे ग़दर के खंडहरों में ढूंढो। कोई कहता, नहीं, यह ईस्ट इंडिया कंपनी की हुकूमत में मिलेगा। कोई और पीछे हटकर इसे मुग़लिया ख़ानदान के इतिहास में टटोलने के लिए कहता। सब पीछे-ही-पीछे हटते जाते थे और पेशेवर क़ातिल और लुटेरे बराबर आगे बढ़े जा रहे थे और लहू और लोहे का ऐसा इतिहास लिख रहे थे, जिसका उदाहरण विश्व-इतिहास में कहीं भी नहीं मिलता।

भारत स्वतंत्र हो गया था। पाकिस्तान अस्तित्व में आते ही आज़ाद हो गया था। लेकिन इन्सान दोनों में ग़ुलाम था—घृणा और द्वेष का ग़ुलाम···धार्मिक पागलपन और जनून का ग़ुलाम···पशुता और अत्याचार का ग़ुलाम!

मैंने बंबई टॉकीज जाना छोड़ दिया। अशोक और वाचा आते, तो मैं अस्वस्थता का बहाना कर देता। इसी प्रकार कई दिन बीत गए। श्याम मुझे देखता और मुस्करा देता। उसको मेरी मानसिक और आंतरिक वेदना का पूरा ज्ञान था, वह मेरे उत्पीड़न को जानता था। कुछ दिन बहुत अधिक पीकर मैंने यह काम भी छोड़ दिया था। सारा दिन गुम-सुम पड़ा रहता। सोफ़े पर लेटा रहता। एक दिन श्याम स्टूडियो से आया, तो उसने मुझे लेटा देखकर मज़ाकिया अंदाज़ में कहा, "क्यों, ख्वाजा, जुगाली कर रहे हो?"

मुझे बहुत झुंझलाहट होती थी कि श्याम मेरी तरह क्यों नहीं सोचता? उसके दिलो-दिमाग़ में वह तूफ़ान क्यों बरपा नहीं है, जिसके साथ मैं दिन-रात लड़ता रहता हूं? वह उसी तरह मुस्कराता, हंसता और शोर मचाता। मगर शायद वह इस निष्कर्ष पर पहुंच चुका था कि जो दूषित वातावरण इस समय चारों ओर मौजूद था, उसमें सोचना ही बेकार था।

मैंने बहुत चिंतन किया, मगर कुछ समझ में न आया। आखिर तंग आकर मैंने कहा, "हटाओ, चलें यहां से!"

श्याम की नाइट शूटिंग थी। मैंने अपना असबाब आदि बांधना आरंभ कर दिया। सारी रात इसीमें गुजर गई। सुबह हुई, तो श्याम शूटिंग से निवृत्त होकर आया। उसने मेरा बंधा हुआ सामान देखा, तो मुझसे केवल इतना पूछा, "चलो? चले?"

मैंने भी केवल इतना ही कहा, "हां, दोस्त!"

इसके बाद मेरे और उसके बीच इस 'पलायन' के बारे में कोई बात न हुई। शेष सामान रखवाने में उसने मेरा हाथ बटाया। इस दौरान रात की शूटिंग के लतीफे सुनाता रहा और खूब हंसता रहा। जब मेरे रवाना होने का समय आया, तो उसने आलमारी में से ब्रांडी की बोतल निकाली। दो पैग बनाए और एक मुझे दिया।

श्याम ने ठहाका लगाते हुए मुझे अपने चौड़े सीने के साथ भींच लिया, "सूअर वहीं के!"

मैंने अपने आंसू रोके, "पाकिस्तान के···!"

श्याम ने प्रेमपूर्वक नारा बुलंद किया, "जिंदाबाद पाकिस्तान!"

"जिंदाबाद हिंदुस्तान!" और मैं नीचे चला गया, जहां ट्रकवाला मेरी प्रतीक्षा कर रहा था।

बंदरगाह तक श्याम मेरे साथ गया। जहाज चलने में काफी देर थी। वह इधर-उधर के लतीफे सुनाकर मेरा दिल बहलाता रहा। जब जहाज ने सीटी दी, तो उसने मेरा हाथ दबाया और सीढ़ी से नीचे उतर गया। मुड़कर उसने मेरी तरफ न देखा और मजबूत कदम उठाता हुआ बंदरगाह से बाहर चला गया।

मैंने लाहौर पहुंचकर उसको पत्र लिखा। उन्नीस-एक-अड़तालीस को उसका जवाब आया :

यहां तुम्हें हम लोग याद करते हैं। तुम्हारे व्यक्तित्व और तुम्हारी

सज्जनता की अनुपस्थिति को महसूस करते हैं। तुम्हारे उस प्रेम को याद करते हैं, जो तुम मुझे हृदय से उन पर न्योछावर करते थे। बाबा अभी तक इस बात पर अड़े हुए हैं कि तुम कन्नी काट गए—इस बार उनको सूचित किए बिना पाकिस्तान भागकर! यह विचित्र विडंबना है कि यह, जो बंबई टॉकीज में मुसलमानों के प्रवेश के विरोध में सबसे आगे था, सबसे पहला आदमी था, जो पाकिस्तान भागकर चला गया—गुरु को अपने दृष्टिकोण और सिद्धांतों का शिकार बनाते हुए! यह बाबा का अपना दृष्टिकोण है। मुझे आशा है कि तुमने उसको अवश्य पत्र लिखा होगा। यदि नहीं लिखा, तो फ़ौरन लिखो, कम-से-कम शराफ़त का यही तकाज़ा है, शिष्टाचार की यही मांग है!

तुम्हारा,

श्याम।

सितारा

मैंने अपने जीवन में कई स्त्रियों के चरित्र और व्यवहार का अध्ययन किया है, परंतु वास्तविकता और तथ्य यह है कि जब मुझे धीरे-धीरे सितारा की जिंदगी के हालात मालूम हुए, तो मैं चकरा गया। वह स्त्री नहीं, एक तूफ़ान है और वह भी ऐसा तूफान कि जो केवल एक बार आकर नहीं टलता, बार-बार आता है। सितारा यों तो दरमियाने कद की औरत है, मगर बला की मजबूत है। उसने जितनी बीमारियां सही हैं, मेरा विचार है, यदि किसी अन्य स्त्री को हुई होतीं, तो वह कभी जीवित न रह सकती।

मैंने देखा है कि सवेरे उठकर वह कम-से-कम एक घंटे तक व्यायाम और नृत्य-कला का अभ्यास करती और यह अभ्यास कोई साधारण नहीं होता। एक घंटे भरपूर नाचना हड्डियों तक को थका देता है। लेकिन सितारा मुझे कभी थकी दिखाई नहीं दी। वह थकनेवाली जिंस नहीं। दूसरे थक-हार जाएंगे, मगर वह वैसी-की-वैसी रहेगी, जैसे उसने कोई परिश्रम किया ही नहीं। उसको अपनी कला से प्रेम है, इसी तरह का घनिष्ठ प्रेम, जो वह विभिन्न पुरुषों से करती रही है।

मामूली-से डांस के लिए वह इतनी मेहनत करेगी, जितनी कोई नर्तकी आयु-पर्यंत नहीं कर सकती। उसकी तबीयत में उपज है। वह हमेशा कोई विशेष बात पैदा करना चाहेगी। चलत-फिरत जो एक नटनी में हो सकती है, सितारा में अधिक-से-अधिक मौजूद है। वह एक पल के लिए भी निचली नहीं बैठ सकती। उसकी बोटी-बोटी, उसका अंग-अंग थिरकता है।

कहा जाता है कि वह नेपाल की रहनेवाली है। मुझे इसके बारे में प्रामाणिक रूप से कुछ ज्ञात नहीं। लेकिन मैं जानता हूं कि सितारा के अलावा उसकी दो बहनें और थीं। यह त्रिकोण इस तरह पूरा होता है— तारा, सितारा और अलकनंदा। तारा और अलकनंदा तो अब लगभग लुप्त हो चुकी हैं।

इन तीनों बहनों की ज़िंदगी बेहद दिलचस्प है। सितारा का कई पुरुषों से संबंध रहा। इस भीड़ में एक शौकत हाशमी भी है, जो अब तक कई पापड़ बेल चुके हैं। हाल ही में उनकी बीवी पूर्णिमा ने उनसे तलाक़ लिया है और वह इस सिलसिले में बड़े दर्दनाक बयान दे चुके हैं। अलकनंदा कई हाथों से गुज़री और अंत में प्रभात के ख्याति-प्राप्त ऐक्टर बलवंतसिंह के पास पहुंची। उसके पास वह अभी तक है या नहीं, इसकी मुझे जानकारी नहीं। इन तीनों बहनों के जीवन की कहानी विस्तारपूर्वक यदि लिखी जाए, तो इसमें हज़ारों सफ़े काले किए जा सकते हैं।

सितारा के संबंध में, जैसाकि मैं इस लेख के आरंभ मे कह चुका हूं, पूरे विस्तार से लिखते हुए झिझकता हूं। वह एक नारी नहीं, कई नारियां हैं। उसने इतने अधिक प्रेम और शारीरिक संबंध किए हैं कि मैं इस संक्षिप्त लेख में उन सबका उल्लेख नहीं कर सकता।

सितारा की मैं जब भी कल्पना करता हूं, तो वह मुझे बंबई की एक ऐसी पंचमंजिली बिल्डिंग-सी प्रतीत होती है, जिसमें कई फ़्लैट और कई कमरे हों और यह तथ्य है कि वह एक ही समय में कई-कई मर्द अपने दिल में बसाए रखती थी। मुझे इतना मालूम है कि जब वह पहले-पहल बंबई में आई, तो उसका संबंध एक गुजराती फ़िल्म डायरेक्टर देसाई से स्थापित हुआ।

उससे मेरी भेंट उस ज़माने में हुई, जब सरोज फिल्म कंपनी जीवित थी। मेरी-उसकी फ़ौरन दोस्ती हो गई, इसलिए कि वह कला का पुजारी और प्रेमी था, साथ ही साहित्यिक शौक़ भी रखता था। इसी दौरान मुझे मालूम हुआ कि सितारा उसकी धर्मपत्नी है, किंतु उससे अलग हो गई है। देसाई को मगर इस जुदाई का इतना रंज नहीं था। उसकी बातों से मुझे केवल इतना मालूम हुआ कि वह उस औरत से पूरी तरह निबट नहीं सकता था।

सितारा इस ज़माने में किसी और के पास थी। लेकिन कभी-कभी अपने पति देसाई के पास भी आ जाती थी। वह स्वाभिमानी पुरुष था, इसलिए वह सितारा के प्रति लापरवाही बरतता था और उसे संक्षिप्त-सी

भेंट के बाद विदा कर दिया करता था।

हिंदू धर्म और हिंदू मत के अनुसार उस समय कोई स्त्री तलाक नहीं ले सकती थी। इसलिए अब भी वह श्रीमती देसाई है, हालांकि वह कई मर्दों से संबध स्थापित करके उनसे संबध-विच्छेद भी कर चुकी है। मैं यह उस ज़माने की बात कर रहा हू, जब डायरेक्टर महबूब का सितारा बुलंदी पर था। महबूब ने उसे अपनी किसी फ़िल्म में लिया, तो उसके साथ सितारा के शारीरिक संबध भी फौरन स्थापित हो गए। इसकी दास्तान मेरी कलम बयान नहीं कर सकती—केवल बन्नो (इशरतजहां) की ज़बान ही बयान कर सकती है।

आउटडोर शूटिंग के सिलसिले में महबूब को हैदराबाद जाना पड़ा था। वहां महबूबसाहब नियमित रूप से हस्ब-दस्तूर नमाज़ पढ़ते थे और सितारा से इश्क फरमाते थे।

बंबई में एक स्टूडियो 'फिल्म सिटी' था। महबूब ने संभवत: इसीमें अपनी कोई फ़िल्म बनानी शुरू की थी। इन दिनों वहां साउंड रिकार्ड करनेवाले श्री पी० एन० अरोड़ा थे (जो अब प्रसिद्ध प्रोड्यूसर हैं)।

डायरेक्टर महबूब से तो सितारा का सिलसिला चल रहा था, लेकिन साप्ताहिक 'रियासत', दिल्ली के संपादक सरदार दीवानसिंह 'मफ़्तून' के कथनानुसार उसका टांका पी० एन० अरोड़ा से भी मिल गया।

डायरेक्टर महबूब ने फ़िल्म खत्म किया, तो सितारा पी० एन० अरोड़ा के यहां बतौर रखैल या बीवी के रहने लगी। लेकिन इस बीच एक दूसरी ट्रेजेडी हो गई। वह यह कि फिल्म सिटी ही में एक नए सज्जन—नज़ीर मियां—तशरीफ लाए। यह बड़े खूबसूरत और सुंदर जवान थे। कम उम्र, ताज़ा-ताज़ा देहरादून से शिक्षा प्राप्त करके आए थे। गाल सुर्ख व सफ़ेद थे। उनको शौक था कि फिल्मी दुनिया में दाखिल हों।

जब आए, तो फ़ौरन उन्हें एक फ़िल्म में रोल मिल गया। इसप्रकार से इस कास्ट में सितारा भी शामिल थी, जो एक ही समय में पी० एन०

अरोड़ा, अलनासिर, महबूब और अपने पति मिस्टर देसाई के पास आया-जाया करती थी।

मालूम नहीं यह पहले की बात है या बाद की, मगर सितारा की दोस्ती नज़ीर से भी हो गई, जिसकी पहली बीवी (जो एक यहूदी [illegible] थी) उसे धता बताकर भाग गई थी। मुझे मालूम नहीं कि न जाने किन परिस्थितियों में इनकी भेंट हुई, लेकिन मैं इतना अवश्य जानता हूं कि इन दोनों में गाढ़ी छनने लगी। नज़ीर सितारा पर लट्टू था और सितारा नज़ीर पर अपनी जान न्योछावर करती थी।

मैं नज़ीर को अच्छी तरह जानता हूं। वह बड़ा सख्त-मिजाज़, कठोर प्रकृति का आदमी है। वह औरत को कुचलकर रखने के दक़ियानूसी विचारों का अनुयायी है। औरत का ज़िक्र ही क्या, मर्द भी जो उसकी नौकरी में हों, उन्हें उसकी गालियां और घुड़कियां सहनी पड़ती हैं।

वह आदमी नहीं, भूत है। लेकिन बड़ा शरीफ़ और वफ़ादार भूत! वह मेरा दोस्त है। जब कभी मुझसे मिलता है, सलाम-दुआ की बजाए गालियां देता है। लेकिन मैं जानता हूं, वह खुले दिल का स्पष्टवादी आदमी है और उसका हृदय प्रेम से भरपूर है।

इस स्पष्टवादी और खुले दिल के आदमी ने सितारा को कई बरस बरदाश्त किया। इसकी कठोर तबीयत के कारण सितारा को इतना साहस न हुआ कि वह अपने पुराने आशनाओं से, पुराने दोस्तों से संबंध क़ायम रखे। लेकिन वह स्त्री, जो केवल एक पुरुष के प्रेम से संतुष्ट न रहती हो, उसका क्या इलाज है? सितारा ने कुछ देर के बाद वही सिलसिला शुरू कर दिया, जिसकी वह अभ्यस्त थी। अरोड़ा, अलनासिर, महबूब और पतिदेव मिस्टर देसाई—सभी उसके प्रेम से उसकी कृपाओं से लाभान्वित होते रहे। यह चीज़ नज़ीर की स्वाभिमानी तबीयत पर भार-स्वरूप गुज़रती थी। वह ऐसा आदमी है कि एक बार किसी स्त्री से संबंध स्थापित कर ले, तो उसे निभाना जानता है। मगर सितारा तो किसी और ही मिट्टी-पानी की बनी थी। वह नज़ीर-जैसे आदमी से भी संतुष्ट नहीं थी।

मैं इसमें सितारा का कोई दोष नहीं देखता। जो-कुछ भी उससे हुआ, सरासर उसकी अपनी प्रकृति के अनुरूप ही हुआ। कुदरत ने उसको इस तौर से बनाया है कि वह सैंकड़ों हाथों में खड़कनेवाला जाम ही बनी रहेगी। कोशिश के बावजूद वह अपनी इस फितरत और नेचर के विरुद्ध नहीं जा सकती।

मैं आपको एक दिलचस्प लतीफा सुनाऊं। मुझे बंबई छोड़कर दिल्ली जाना पड़ा। वहां मैंने ऑल इंडिया रेडियो में नौकरी कर ली। लगभग एक साल तक मैं बंबई की फिल्मी दुनिया के उत्थान और पतन से अनभिज्ञ रहा। एक दिन अचानक मैंने अरोड़ा को नई दिल्ली में देखा। हाथ में मोटी छड़ी, कमर दोहरी हो रही थी। यों भी बेचारा अच्छे स्वभाव का आदमी है, मगर इस समय बहुत रद्दी हालत में था। मैं टांगे में था और वह पैदल। शायद चहल-कदमी के लिए निकला था। मैंने टांगा रोका और उससे पूछा कि क्या किस्सा है? उसका हुलिया क्यों इतना बिगड़ा हुआ है? उसने हांफते हुए, मगर जरा फीकी-सी मुस्कराहट के साथ कहा, "सितारा! मंटो! सितारा!" मैं सब समझ गया।

अब एक और लतीफा सुनिए।

अलनासिर, जो अब बहुत मोटा और भद्दा हो गया है, जब शुरू-शुरू में फिल्म सिटी में आया, तो बहुत खूबसूरत था। बड़ा नरम व नाजुक, सुर्ख व सफेद। देहरादून के पर्वतीय वातावरण ने उसे निखार दिया था। मैं तो यह कहूंगा कि वह नारीत्व की सीमा तक सुंदर था। उसमें वे सब अदाएं थीं, जो एक खूबसूरत लड़की में हो सकती हैं। मैं जब दिल्ली में डेढ़ साल बिताने के बाद सैयद शौकत हुसैन रिज़वी के बुलाने पर बंबई पहुंचा, तो उससे मेरी भेंट मिनर्वा मूवीटोन में हुई। वह गेट के बाहर खड़ा था। मैं आश्चर्य-चकित रह गया। कपोलों का गुलाबी रंग नदारद; शरीर पर पतलून ढीली-ढीली—ऐसा लगता था कि वह सिकुड़ गया है, निचुड़ गया है! मैंने उससे बड़े चिंतापूर्ण स्वर में पूछा, "मेरी जान! यह तुमने अपनी क्या हालत बना ली है?"

उसने अपना मुंह मेरे कान के पास लाकर कहा, "सितारा!...मेरी

जान, सितारा!…"

जरा देखो, सितारा! मैंने सोचा, यह सितारा केवल पीलापन—नीलिमा—फैलाने के लिए ही पैदा हुई है। इधर पी० एन० अरोड़ा, इंग्लैंड का शिक्षित नौजवान; उधर देहरादून के स्कूल का पढ़ा हुआ यह सुंदर लड़का!

अलग ले जाकर जब मैंने उससे पूरा विवरण पूछा, तो उसने मुझे बताया कि वह सितारा के चक्कर में फंस गया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह बीमार हो गया। जब उसको इस बात का एहसास हुआ कि यदि वह ज्यादा दिनों तक इस चक्कर में रहा, तो वह समाप्त हो जाएगा, तो वह एक दिन टिकट कटाकर देहरादून चला गया, जहां उसने तीन महीने एक सेनिटोरियम में व्यतीत किए और अपने खोए हुए स्वास्थ्य को किसी क़दर प्राप्त किया। उसने मुझसे यह भी कहा कि वह इस बीच मुझे हिंदी में बड़े लंबे-लंबे पत्र लिखती रही, किंतु मैं ये ख़त पढ़ नहीं सकता था, बल्कि ऐसे पत्रों के आगमन पर कांप-कांप अवश्य जाता था। उसने फिर मेरे कान में कहा, "मंटोसाहब, बड़ी अजीब औरत है।"

सितारा वास्तव में है ही एक अजीब औरत। ऐसी औरतें लाख में दो-तीन ही होती हैं। मैं जानता हूं कि वह कई बार ख़तरनाक तौर पर बीमार हुई। उसको ऐसी बीमारियां हुईं, ऐसे रोग लगे कि साधारण स्त्री कभी जीवित नहीं बच सकती। मगर वह ऐसी सख़्त जान है कि हर बार मौत को धोखा देती रही। इतनी बीमारियों के बाद ख़याल था कि उसकी नाचने की शक्तियां शिथिल पड़ जाएंगी, किंतु वह अब भी अपनी युवावस्था की भांति ही नाचती है। हर दिन घंटों नाचने का अभ्यास करती है। मालिश करनेवाले से तेल की मालिश कराती है और वह सब-कुछ करती है, जो पहले करती आई है। उसके घर में दो नौकर होते हैं—एक मर्द, एक औरत। मर्द आम तौर पर उसका 'मालिशिया' होता है। जो औरत है, उसके विषय में बस इतना ही कह सकता हूं

[illegible] तैयार थी, जिसमें [illegible] चाहता था।

नज़ीर इस ज़माने में रणजीत फ़िल्म स्टूडियो के ठीक सामने एक मकान में रहता था। बड़ी मौक़े की जगह थी। नज़ीर ने एक पूरा फ़्लैट ले रखा था, उसीमें उसकी क़ायम की हुई हिंद पिक्चर्स का दफ़्तर भी था। दो-तीन कमरे थे, ऐसे में क्या क्या हो सकता है! अतः [illegible] नौजवान आसिफ़ को हर वह पहलू देखने का मौक़ा मिला, जो पुरुष और नारी के पारस्परिक संबंधों से जुड़ा होता है।

नौजवान आसिफ़ के लिए एक नया अनुभव था—बड़ा हैरतअंगेज़! उसने अपने विवाहित दोस्तों से वैवाहिक जीवन के रहस्य कई बार सुने थे, मगर उसे कभी आश्चर्य नहीं हुआ था। उसको मालूम था--एक बिस्तर होता है, जिस पर मानव-प्रकृति अपना प्रेमपूर्ण खेल खेलती है। किंतु आसिफ़ की आंखों ने जो-कुछ एक बार केवल संयोगवश देखा, वह बिल्कुल भिन्न था—बड़ा ख़ौफ़नाक। उसने उसकी हड्डी-हड्डी झिंझोड़ दी—उसने कई बार कुत्तों की लड़ाई देखी थी, जो एक-दूसरे से बड़ी निर्दयतापूर्वक गुत्थम-गुत्था हो जाते थे, एक-दूसरे को झिंझोड़ते, काटते और नोचते थे। इससे उसका तन-बदन कांप गया। उसने सोचा, ये मुहब्बत की बातें कोरी बकवास हैं। वास्तव में इन्सान दरिंदा है, और उसकी मुहब्बत एक ख़ौफ़नाक क़िस्म की कुश्ती। मगर उसको अखाड़े में उतरने और ऐसी कुश्ती लड़ने का शौक़ ज़रूर था। उसकी भुजाओं में शक्ति थी, बल था। उसके बदन में हरारत थी। उसके पुट्ठे फ़ौलादी थे, उसकी ख़्वाहिश थी कि केवल एक बार उसे मौक़ा दिया जाए, तो वह प्रतिद्वंद्वी को चारों खाने चित्त गिरा दे।

उस ज़माने में डायरेक्टर नैयर—एक ज़हीन मगर बदक़िस्मत डायरेक्टर—भी नज़ीर के साथ था। आसिफ़ और वह दोनों हमउम्र थे—दोनों कुंआरे और ख़्वाबों की दुनिया में रहनेवाले। आपस में मिलते, तो औरतों की बातें करते—उन औरतों की, जो भविष्य में उनकी होनेवाली थीं। पर जब सितारा का ज़िक्र आता, तो दोनों कांप उठते और एक ऐसी दुनिया में चले जाते, जहां जिन्न, देव और चुड़ैलें रहती

है। लेकिन उसको इतना मालूम था कि सितारा नज़ीर के साथ वफ़ादार नहीं, वह हरजाई है। यों तो वह नज़ीर की 'होल टाइम' रखैल के रूप में रहती है, मगर पी० एन० अरोड़ा के पास भी जाती है और कभी-कभी देसाई के पास भी, जो बेचारा बड़े हसरत के दिन गुज़ार रहा था—और फिर और भी थे, जिनमें अल्नासिर भी शामिल था।

सुबह-सवेरे सितारा उठती और दूसरे कमरे में नृत्य-कला का अभ्यास आरंभ कर देती। यह भी एक हैरतनाक चीज़ थी कि प्रात: उठते ही वह लिप्यों की भांति लगातार नाचती रहे। ऐसे-ऐसे तोड़े ले कि ज़मीन घूम जाए! तबलची के हाथ थक जाएं, मगर उसे कुछ न हो! अभ्यास के बाद वह अपने विशेष और 'रिज़र्व' मालिशिये से मालिश कराती थी। उसके बाद नहा-धोकर वह नज़ीर के कमरे में जाती, जो तब सो रहा होता। उसको जगाती और अपने हाथ से दूध या खुदा मालूम किस चीज़ का एक प्याला उसे ज़बरदस्ती पिलाती और एक दूसरा नाच शुरू हो जाता। यह सब-कुछ आसिफ और नैयर की आंखों के सामने हो रहा था। उनकी उम्र ताकने-झांकने की उम्र थी। जब आदमी खाली कमरों में भी वैसे ही खिड़की की दराजों से झांककर देखता है, रोशनदानों से भरे कमरों पर दृष्टिपात करता है, उनका जायज़ा लेता है, तो ज़रा-सी आवाज़ आने पर उसके कान खड़े हो जाते हैं। नैयर आसिफ की तुलना में शारीरिक दृष्टि से बहुत कमज़ोर था। उसकी वासना-संबंधी आवश्यकताएं भी इसी लिहाज़ से संतुलित थीं। परंतु आसिफ के मज़बूत और पुष्ट शरीर की नस-नस में बिजली भरी हुई थी, जो किसी पर गिरना चाहती थी। इसीलिए आसिफ चाहता था कि अंधेरी रात हो, आकाश पर काले बादलों की भीड़ हो, कान बहरे कर देनेवाली बिजली की कड़क हो और ऐसे झंझावात में वह किसीका हाथ दृढ़ता से पकड़े और उसे मज़बूती से खींचता कहीं दूर ले जाए, जहां पत्थरों का बिस्तर हो···

नज़ीर का भांजा होने के नाते सितारा घंटों आसिफ के पास बैठी रहती और इधर-उधर की बातें करती रहती थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, आसिफ की लज्जा और झिझक कम होती गई, परंतु उसको

इतना मालूम नहीं था कि वह सितारा को हाथ लगाता, क्योंकि वह अपने मामू की सख्त तबीयत से परिचित था और उससे डरता था। लेकिन इस दौरान वह इतना जान गया था कि सितारा उसकी ओर आकृष्ट है। अतः जब भी चाहे, उसकी कलाई अपने मजबूत हाथ में पकड़कर उसे जहां चाहे ले जा सकता है ''मगर वह घुप अंधेरी रात, वह तूफ़ान और झंझावात और पत्थरों का वह बिस्तर !

आख़िर सितारा की करतूतें देखकर नज़ीर भौंचक्का रह गया।

नज़ीर के सिर से अब पानी गुज़र चुका था। काफ़ी कहा-सुनी के बाद उसने सितारा से कहा कि "अब तुम यहां नहीं रह सकतीं, अपना बिस्तर गोल कर दो ।"

सितारा कुछ भी हो, आखिर औरत जात है। नज़ीर द्वारा तिरस्कृत किए जाने के बाद उसमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वह अकेली अपना बिस्तर गोल कर सकती। नज़ीर से वह कैसे सहायता मांगती ? वह क्रोध में बिफरा, मुंह में गाज निकालता बाहर निकलकर अपने दफ़्तर में जा बैठा। आसिफ़ ने उसका यह रंग देखा, तो उसको विश्वास हो गया कि वह अंधेरी रात आ गई !

थोड़ी देर वह खामोश बैठा रहा। इसके बाद वह उठा और धीरे-धीरे दूसरे कमरे में पहुंच गया, जहां सितारा पलंग पर बैठी अपनी चोटी सहला रही थी।

थोड़ी-सी बातों ही से उसे मालूम हो गया कि मामला खत्म है। दिल-ही-दिल में वह बहुत प्रसन्न हुआ। अतः उसने सितारा को ढाढस दिया कुछ इस तौर पर कि नया मामला शुरू हो गया।

आसिफ़ ने उसका बोरिया-बिस्तर बांधा और उसके साथ उसे उसके दादर-स्थित घर तक छोड़ने गया। यहां सितारा ने आसिफ़ का बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया।

आसिफ़ ने साहस से काम लेकर सितारा का हाथ पकड़ लिया और

हा, "इसकी क्या ज़रूरत थी, सितारा ?"

सितारा ने अपना हाथ आसिफ़ की पकड़ से छुड़ाने का प्रयत्न किया, लेकिन आसिफ़ संतुष्ट न था। थोड़ी देर आत्मीयता की बातें हुईं। सितारा ने आसिफ को अपने उस हुनर का नमूना चखाया, जिससे वह इस समय तक सैकड़ों मर्द—दुबले-पतले, हट्टे-कट्टे, ज़िद्दी और हठी पुरुषों को अपनी इच्छाओं का दास बना चुकी थी।

अगर दिन होता, तो निस्संदेह आसिफ को तारे नज़र आ जाते। मगर रात को उसे स.दाबाद सर्किल के इस फ्लैट में सूर्योदय होता नज़र आया। उसकी मुसर्रतों का, उसके आनंद का दिन ! किन्तु वह फिर भी संतुष्ट नहीं था। उसने सितारा से कहा कि "देखो तुम्हारा-मेरा संबंध बहुत मुकम्मल होना चाहिए। हरजाईपन छोड़ो, बस एक की हो जाओ।"

सितारा ने उसे विश्वास दिलाया कि वह आसिफ़ के अलावा किसी-की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखेगी। आसिफ संतुष्ट हो गया, परन्तु इस भय से कि नज़ीर उससे इतनी देर लगाने का कारण न पूछ बैठे, आशिके-सादिक़ ईमानदार प्रेमी की भांति उसका हाथ चूमकर चला गया और वायदा कर गया कि दूसरे दिन अवश्य आएगा।

वह गया, तो सितारा उठी। शृंगार-मेज़ के पास जाकर उसने अपने बाल ठीक किए। साड़ी बदली और फिर आंखें और आस उठाए नीचे उतरी तथा टैक्सी लेकर पी० एन० अरोड़ा के पास चली गई।

बात सख्त है, लेकिन हुआ करे। मुझे कहना यह है कि सितारा को मुझसे नफ़रत थी। मैं 'मुख़बिर' नामक पत्रिका का संपादक था और बेलाग लिखाड़ी था। 'बाल-की-खाल' और 'नित-नई' के कालमों में कई बार मैंने उसकी छलकी की थी, लेकिन बड़े सलीके और चतुराई से। इसमें कोई खटकने की बात नहीं थी, फिर भी वह नाराज़ थी और मुझे इस नाराज़ी की—सच पूछिए, तो—कोई परवाह भी नहीं थी, इसलिए कि मुझे उससे कोई गरज़ नहीं थी, मेरा कोई स्वार्थ निहित नहीं था और मैं वैसे भी फ़िल्मी-हस्तियों से दूर ही रहता था।

मैंने 'नित-नई' या 'बाल-की-खाल' के कालमों में जब नज़ीर और

उसकी लड़ाई का उल्लेख ज़रा नमक-मिर्च लगाकर किया, तो वह बहुत क्रोधित हुई और उसने मुझे ख़ूब गालियां दीं।

इसके बाद जब मुझे अपने जासूसों के ज़रिए आसिफ़ और उसके गुप्त-प्रेम का पता चला और मैंने चुभते हुए इशारों में इसकी चर्चा अपने कालमों में की, तो वह भन्ना गई और उसने आसिफ़ से कहा, "तुम इस आदमी को पीटते क्यों नहीं ? ख़ुद नहीं पीटते, तो किसीसे पिटवाओ या किसी और अख़बारवाले से कहो कि वह उसे अपने अख़बार में ढेरों गालियां दे !"

आसिफ़ बड़ा संयमी आदमी है। उसमें सज्जनता है, समझदारी है। मजाक को समझने की योग्यता रखता है। उसने सितारा की बातें इस कान सुनीं, उस कान निकाल दीं।

मामला अब गंभीर रूप धारण कर गया था। यह तो आपको मालूम हो ही चुका है कि सितारा किस क़िस्म की स्त्री है। अगर उससे किसी मर्द का वास्ता पड़ जाए, तो उसकी रिहाई कठिन हो जाती है। एक अलनासिर ही ऐसा था, जो कुछ महीने उसके साथ बिताकर देहरादून भाग गया, वरना एक दिन उसकी अंतड़ियां बिलकुल जवाब दे देतीं और उसकी क़ब्र बंबई के किसी क़ब्रिस्तान में बनी होती, जिसके सिरहाने पर कुछ इस तरह का शेर लिखा होता :

लहद पर मेरी वह परदापोश आते हैं,
चिराग़े गोरे ग़रीबां सदा बुझा देना।

हां, तो मामला बहुत नज़ाकत अख़्तियार कर गया था। इसलिए कि नज़ीर के हृदय में संदेह उत्पन्न हो रहे थे। वह सोचता था; "यह मेरा भांजा इतनी-इतनी देर कहां ग़ायब रहता है ?" जब वह उससे पूछता, तो आसिफ़ कोई बहाना पेश कर देता। मगर ये बहाने कब तक चलते ?—इनका स्टाक एक दिन समाप्त होना ही था।

नज़ीर के हृदय में अब सितारा के लिए कोई स्थान नहीं था। वह ऐसा आदमी नहीं कि अपना निश्चय बदल दे। उसको सितारा की नहीं, आसिफ़ की चिंता थी कि वह कहीं उसके हत्थे न चढ़ जाए। वह इस

औरत के साथ कई वर्ष व्यतीत कर चुका था, उसकी रग-रग और नस-नस से परिचित था। उसको मालूम था कि आसिफ-जैसे नवयुवक उसका मन-भाता खाजा है और उनको अपने जाल में फंसाना इस-जैसी अनुभवी औरत के लिए कोई कठिन काम नहीं था। मजे की बात यह है कि लोग स्वयं ही, स्वत. ही, उसके जाल में फंस जाते थे। एक बार फंस जाते, तो 'मुक्ति' कठिन हो जाती थी।

सितारा से किसी मर्द का पाला पड़ जाए और इत्तफ़ाक से वह सितारा को पसंद आ जाए, तो फिर दिनो रात, अधिकांश भाग उसीके साथ काटना पड़ता है। नज़ीर को आसिफ की लगातार अनुपस्थितियों ही से पता चल गया था। मगर जब आसिफ कहता, "मामूजान! यह आप क्या कह रहे हैं? मैं इसके संबंध में तो सोच भी नहीं सकता!" तो वह असमंजस में पड़ जाता। लेकिन मन में उसे पक्का विश्वास था कि यह छोकरा फंस चुका है और झूठ बोल रहा है।

आसिफ वास्तव में झूठ बोल रहा था। मामला यदि किसी अन्य महिला का होता, तो वह कभी झूठ न बोलता, मगर सितारा उसके मामू की रखैल थी। उसके साथ वह ऐसे संबंध स्थापित नहीं कर सकता था।

पीछे हटना—पलायनवाद—अब बहुत कठिन था। आसिफ अब एक 'अबला' नारी की पकड़ में था! भाग निकलने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता था। उसको बस एक मौक़ा चाहिए था—ऐसा मौक़ा कि वह सब-कुछ स्वयं अपनी आंखों से देखे…।

एक दिन नज़ीर ने वह सब-कुछ देख भी लिया, जो वह ख़ुद अपनी आंखों से देखना चाहता था। मेरी याददाश्त मेरा साथ नहीं देती। मुझे सारी घटनाएं अच्छी तरह मालूम थीं, मगर अब इतना समय बीत गया है कि बहुत-सी बातें दिमाग़ से उतर गई हैं। वह ख़ून, जो नज़ीर की आंखों में एक लंबे समय से उतर रहा था, वह उस वक़्त पी गया और उन पर टूट पड़ा।

जब इस समाचार की पुष्टि हो गई, तो मैंने अपनी पत्रिका, 'मुसव्विर' के कालमों में जी भरकर लिखा। लगभग हर हफ्ते इस नव-विवाहित दंपति का उल्लेख होता—बड़े व्यंग्यात्मक और मज़ाकिया अंदाज़ में।

'हनीमून' यानी सुहाग-रातें मनाने के बाद यह जोड़ा जब बंबई वापिस आया, तो नज़ीर खून के घूंट पीकर रह गया। एक बार मुझे रेसकोर्स जाने का अवसर हुआ। मैंने दूर से देखा कि भीड़ में से आसिफ़ शार्कस्किन के बेदाग सूट को पहने हुए, फुरतीली सितारा की कमर में हाथ दिए चला आ रहा है। जब वह मेरे करीब पहुंचा, तो वह पहले मुस्कराया, फिर हंसा और मेरी तरफ़ हाथ उठाकर कहने लगा, "भई ख़ूब—बहुत ख़ूब! 'नमक-मिर्च' और 'बाल-की-खाल' के कालमों में तुम जो कुछ लिख रहे हो, वह ख़ुदा की कसम लाजवाब है!"

सितारा त्यौरी चढ़ाकर एक तरफ़ हट गई। किंतु आसिफ़ ने उस ओर कोई ध्यान न दिया और मुझसे आत्मीयता के साथ देर तक बातें करता रहा। मैं इसके पहले निवेदन कर चुका हूं कि वह बड़ी बुद्धि का आदमी है और बातों की गहराई को समझने की योग्यता रखता है।

बहरहाल, जहां तक मैं समझता हूं, आसिफ़ सितारा से वैधानिक रीति से विवाह कर चुका था। मगर एक अरसे के बाद जब मैंने उससे पूछा, "क्यों, आसिफ़, क्या वास्तव में सितारा तुम्हारी विवाहिता बीबी है?" तो वह हंसा, "कैसा निकाह और कैसी शादी!"

अब अल्लाह ही बेहतर जानता है कि असली मामला क्या था और क्या है!

आसिफ़ का अपना कोई भी मकान नहीं था। बस, दोनों वहीं ख़ुदादाद सर्किल, दादर, में रहते थे और खुले-आम रहते थे। सितारा की मोटर थी। उसमें घूमते थे।

एक ज़माना गुज़र गया। आसिफ़ और सितारा मियां-बीबी की

मलमल का कुरता जगह-जगह से फटा हुआ है। गर्दन और सीने पर नील पड़े हैं। बाल परेशान हैं। सांस फूली हुई है। साधारण सलाम-दुआ होती और वह फर्श पर ढेर हो जाता। थोड़ी देर के बाद सितारा आसिफ़ के लिए एक प्याला भेजती, जिसमें मालूम नहीं, किस चीज़ की खीर होती। आसिफ धीरे-धीरे प्याला खत्म करता। इसके बाद हम अपना काम आरंभ कर देते, जो ज्यादातर गप्पों पर आधारित होता।

काफ़ी समय बीत गया। सितारा और आसिफ के संबंध बड़े मज़बूत नज़र आते थे। मगर एकदम जाने क्या हुआ कि यह सुनने में आया कि आसिफ़ अपने अज़ीज़ों में किसी लड़की से शादी कर रहा है। तारीख़ पक्की हो गई है और वह जल्दी ही अपने दोस्तों के साथ लाहौर रवाना होनेवाला है।

उसके बाद सूचना मिली कि लाहौर में उसकी शादी बड़े ठाठ-बाट से हुई। खूम-के-खूम लुटाए गए। मुजरे हुए और रागरंग की कई महफ़िलें जमीं। फिर सुना कि आसिफ अपनी नई-नवेली दुल्हन के साथ बंबई पहुंच चुका है।

यह शादी अधिक समय तक कायम न रही। मालूम नहीं क्या हुआ कि आसिफ ने अपनी बीवी के पास जाना छोड़ दिया। वैमनस्य हुआ। उसके बाद पता चला कि तलाक़ होनेवाला है और इस दौरान आसिफ बराबर सितारा के यहां जाता था।

आसिफ़ ने ब्याह किया। लाहौर में बड़े ठाठ की मजलिसें जमीं। उसके बाद आसिफ अपनी बीवी को लेकर बंबई आया। माली हिल पर ठहरा और दो-तीन महीने के अंदर-अंदर उसने अपनी बीवी को छोड़ दिया—इसका कारण सितारा के अतिरिक्त और क्या हो सकता था?

सितारा मर्द को पहचाननेवाली औरत है। उसको वे तमाम दांव आते हैं, जो मर्द को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं, मगर यों कहिए कि उसे दूसरी औरतों के लिए बिलकुल नाकारा और नपुंसक बना देते हैं। यही वजह है कि आसिफ ने अपनी बीवी को छोड़ दिया और सितारा की आगोश में चला गया, इसलिए कि उसमें आकर्षण था।

[illegible] थे। मगर मुझे [illegible] और [illegible] याद आ गया।

जिस ज़माने में आसिफ़ से मेरी दोस्ती नहीं थी और उसका संबंध भी सितारा के साथ स्थापित नहीं हुआ था, के० आसिफ़साहब के चेहरे पर [illegible] कीलें और इतने ही मुहासे थे, जिनके संबंध में कहा जाता है कि ये जवानी की निशानियां हैं। मैं सोचता हूं, अगर जवानी की निशानियां इतनी बदनुमा और कष्टकारक हैं, तो खुदा करे, किसी पर जवानी न आए!

मैं जब उसके चेहरे की ओर देखता, जो घिनौना-सा दिखाई देता, तो मुझे बड़ी कोफ़्त होती। मैं नीम-हकीम भी हूं। अपनी जानकारी के मुताबिक और डाक्टर दोस्तों से परामर्श करके मैंने कई औषधियां ख़रीदकर उसको दीं, परंतु कोई लाभ न हुआ। कीलें उसी तरह मौजूद थीं। मगर जब सितारा उसके जीवन में आई, तो चंद महीनों के अंदर-अंदर उसका चेहरा बिलकुल साफ़ हो गया। सिर्फ़ निशान बाक़ी रह गए थे।

बहुत देर तक सितारा और आसिफ़ इकट्ठे वैवाहिक जीवन बसर करते रहे। अब दोनों संभवतः माहिम के एक फ़्लैट में रहते थे।

मुझे वहां जाने का कई बार मौक़ा मिला। उन दिनों आसिफ़ 'फूल' बनाने के बाद 'अनारकली' बनाने की तैयारी कर रहा था। इसकी कहानी कमाल अमरोहवी ने लिखी थी, मगर वह शायद उससे संतुष्ट नहीं था, क्योंकि वह कई आदमियों को निमंत्रण दे चुका था कि वे इसमें कुछ नवीनता पैदा करें। मैं भी उन्हीं लोगों में से एक था।

मैं आम तौर पर सुबह आठ बजे के क़रीब वहां पहुंचता। दरवाज़ा एक बुढ़िया खोलती, जो मलमल की बारीक साड़ी पहने होती। उसे देखकर मुझे सख्त कोफ़्त होती। मुझे लगता कि दरवाज़ा अलिफ़-लैला की किसी कुटनी ने खोला है।

मैं अंदर जाता और सोफ़े पर बैठ जाता। साथवाले कमरे से, जो संभवतः शयन-कक्ष था, ऐसी-ऐसी आवाजें आतीं कि आत्मा कांप जाती। थोड़ी देर के बाद आसिफ़ प्रकट होता—हस्ब आदत अपने होंठ चाटते हुए। उसका पागलपन अथवा कामातुरता देखने की चीज़ थी।

मलमल का कुरता जगह-जगह से फटा हुआ है। गर्दन और सीने पर नील पड़े हैं। बाल परेशान हैं। सांस फूली हुई है। साधारण सलाम-दुआ होती और वह फ़र्श पर ढेर हो जाता। थोड़ी देर के बाद सितारा आसिफ के लिए एक प्याला भेजती, जिसमें मालूम नहीं, किस चीज़ की खीर होती। आसिफ धीरे-धीरे प्याला खत्म करता। इसके बाद हम अपना काम आरंभ कर देते, जो ज्यादातर गप्पों पर आधारित होता।

काफ़ी समय बीत गया। सितारा और आसिफ के संबंध बड़े मज़बूत नज़र आते थे। मगर एकदम जाने क्या हुआ कि यह सुनने में आया कि आसिफ अपने अज़ीज़ों में किसी लड़की से शादी कर रहा है। तारीख पक्की हो गई है और वह जल्दी ही अपने दोस्तों के साथ लाहौर रवाना होनेवाला है।

उसके बाद सूचना मिली कि लाहौर में उसकी शादी बड़े ठाठ-बाट से हुई। खम-के-खम लुटाए गए। मुजरे हुए और रागरंग की कई महफ़िलें जमीं। फिर सुना कि आसिफ अपनी नई-नवेली दुल्हन के साथ बंबई पहुंच चुका है।

यह शादी अधिक समय तक कायम न रही। मालूम नहीं क्या हुआ कि आसिफ ने अपनी बीवी के पास जाना छोड़ दिया। वैमनस्य हुआ। उसके बाद पता चला कि तलाक होनेवाला है और इस दौरान आसिफ़ बराबर सितारा के यहां जाता था।

आसिफ ने ब्याह किया। लाहौर में बड़े ठाठ की मजलिसें जमीं। उसके बाद आसिफ़ अपनी बीवी को लेकर बबंई आया। पाली हिल पर ठहरा और दो-तीन महीने के अंदर-अंदर उसने अपनी बीवी को छोड़ दिया—इसका कारण सितारा के अतिरिक्त और क्या हो सकता था?

सितारा मर्द को पहचाननेवाली औरत है। उसको वे तमाम दांव आते हैं, जो मर्द को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं, मगर मैं कहिए कि उसे दूसरी औरतों के लिए बिलकुल नाकारा और नपुंसक बना देते हैं। यही वजह है कि आसिफ ने अपनी बीवी को छोड़ दिया और सितारा की आगोश में चला गया, इसलिए कि उसमें आकर्षण था।

मैंने यह लेख लिखा है। मुझे मालूम है कि आसिफ़ बड़ा संयमी और समझदार आदमी है। वह मुझसे नाराज़ नहीं होगा। सितारा अवश्य नाराज़ होगी—मगर वह मुझे थोड़ी देर के लिए बख़्श देगी, क्षमा कर देगी, इसलिए कि उसका दृष्टिकोण भी संकुचित और उथला नहीं है। वह बड़ी कद्दावर औरत है, हालांकि उसका क़द बहुत पस्त है। वह मुझे न मालूम कैसा आदमी समझती है, मगर मैं उसे बहैसियत एक नारी के ऐसी औरत समझता हूं, जो सौ साल में शायद एक बार जन्म लेती है। ●
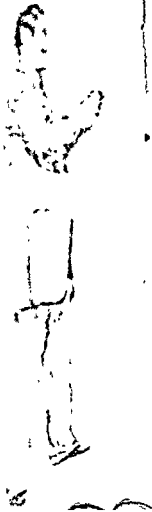
वी० एच० देसाई

वी.एच.देसाई

लाइट्स ऑन !…फैन ऑफ !…कैमरा रेडी!… स्टार्ट मिस्टर जगताप !"

"स्टार्टमिड !"

"सीन थर्टी फोर,…टेक टेन !

"नीलादेवी आप कुछ चिंता न कीजिए। मैंने भी पेशावर का पेशाब पिया है !"

"कट ! कट !"

लाइट्स ऑन हुई। वी० एच० देसाई ने रायफल एक ओर रखते हुए बड़े तपाक से अशोक से पूछा, "ओ० के०, मिस्टर गांगोली ?"

अशोक ने, जो जल-भुनकर राख होने के निकट था, भयंकर दृष्टि से शून्य में देखा और जहर के कुछ बड़े-बड़े घूंट जल्दी-जल्दी पीकर, चेहरे पर कृत्रिम प्रसन्नता प्रकट करते हुए देसाई से कहा, "वंडरफुल !" फिर उसने अर्थपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा, "क्यों मंटो ?"

मैंने देसाई को गले लगा लिया, "वंडरफुल !"

हमारे चारों ओर लोग अपनी-अपनी हंसी का बहुत बुरी तरह गला घोट रहे थे। देसाई बहुत प्रसन्न था, चूंकि उसने बहुत देर के बाद मेरे मुंह से अपनी इतनी प्रशंसा सुनी थी। दरअसल अशोक ने मुझे मना कर दिया था कि मैं अपनी झुंझलाहट हरगिज-हरगिज न प्रकट करूं, क्योंकि उसे अंदेशा था कि देसाई बौखला जाएगा और सारा दिन गारत कर देगा।

जब कुछ क्षण बीत गए, तो देसाई ने डायलाग के माहिर दीक्षित से कहा, "दीक्षितसाहब, नेक्स्ट डायलाग ?"

यह सुनकर अशोक, जो 'आठ दिन' डायरेक्ट कर रहा था, मुझसे बोला, "मंटो, मेरा विचार है, पहले डायलाग का एक टेक और ले लें।"

मैंने देसाई की ओर देखा, "क्यों, देसाईसाहब ? मेरा विचार है कि इस बार और भी वंडरफुल हो जाए।"

देसाई ने गुजराती ढंग से अपना सिर हिलाया, "हां,…तो ले लो, अभी गरमा-गरम मामला है !"

सखाराम चिल्लाया, "लाइट्स ऑन !"

लाइट्स रोशन हुईं। देसाई ने रायफल संभाली।

दीक्षित दौड़ के देसाई की ओर लपका और डायलाग की पुस्तक खोल कर उसने कहा, "मिस्टर देसाई, जरा यह डायलाग याद कर लीजि[ए]

देसाई ने पूछा, "कौनसा डायलाग ?"

दीक्षित ने कहा, "वही जो आपने इतना वंडरफुल बोला था, ति[नक] उसे दोहरा दीजिए।"

देसाई ने बड़े संगीन विश्वास से कंधे पर रायफल जमाते हुए कह[ा], "मुझे याद है।"

मैंने देसाई के कंधे पर हाथ रखा और बड़े गैर-संजीदा लहजे [में] कहा, "हां, तो वह क्या है, देसाईसाहब—नीलादेवी, आप कोई चि[न्ता] न कीजिए। मैंने भी पेशावर का पानी पिया है !"

देसाई ने अपने सिर पर पेशावरी लुंगी को दुरुस्त किया और वी[रा] (फ़िल्म में नीलादेवी) से मुख़ातिब होकर कहा, "नीलादेवी, आप कं[ोई] पेशावर न कीजिए, मैंने भी आपका पानी पिया है।"

वीरा इतनी अधिक हंसी कि देसाई डर गया, "क्या हुआ, मि[स] वीरा ?"

वीरा साड़ी के आंचल में हंसी दबाती सैट से बाहर चली गई देसाई ने चिंता प्रकट करते हुए दीक्षित से पूछा, "क्या बात थी ?"

दीक्षित ने अपना हंसी से उबलता हुआ मुँह दूसरी तरफ़ कर लिया मैंने देसाई की परेशानी दूर करने के लिए कहा, "नथिंग सीरियस-खांसी आ गई !"

देसाई हंसा, "ओह !" फिर वह मुस्तैदी से अपने डायलाग की ओ[र] आकृष्ट हुआ, "नीलादेवी, आप कोई खांसी न कीजिए, मैंने भी देवी का''

अशोक अपने सिर को मुक्के मारने लगा। देसाई ने देखा, तो खि[न्न] होकर उससे पूछा, "क्या बात, मिस्टर गंगोली ?"

गांगुली ने एक ज़ोर का मुक्का अपने सिर पर मारा, "कुछ नहीं सिर में दर्द था—तो हो जाए टेक !"

देसाई ने अपना कद्दू-सा सिर हिलाया, "हूँ !"

गांगुली ने मुर्दा आवाज में कहा, "कैमरा रेडी ! रेडी मिस्टर जगताप !"

भोंपू से जगताप की भनभनाहट सुनाई दी, "रेडी !"

गांगुली ने और अधिक मुर्दा आवाज में कहा, "स्टार्ट !"

कैमरा स्टार्ट हुआ, क्लिप स्टिक हुई।

"सीन थर्टी फ़ोर, ···टेक इलेवन !"

देसाई ने रायफल लहराई और वीरा से कहना आरम्भ किया, "नीला बाई, आप कोई देवी न कीजिए। मैंने भी पेशावर का···!"

अशोक पागलों की भांति चिल्लाया, "कट ! कट !"

देसाई ने रायफल फ़र्श पर रखी और घबराकर अशोक से पूछा, "ऐनी मिस्टेक, मिस्टर गंगोली ?"

अशोक ने देसाई की ओर क़ातिलाना निगाहों से देखा। मगर फ़ौरन ही उनमें भेड़ों की-सी नरमी और मामूमियत उत्पन्न करते हुए कहा, "कोई नहीं—बहुत अच्छा था···बहुत ही अच्छा !" फिर वह मुझसे बोला, "आओ मंटो, ज़रा बाहर चलें।"

सैट से बाहर निकलकर अशोक लगभग रो दिया, "मंटो ! बताओ, अब क्या किया जाए ? सुबह से यह वक्त हो गया है। पेशावर का पानी उसके मुंह पर चढ़ता ही नहीं ! मेरा विचार है, लंच के लिए ब्रेक कर दूं।"

यह माक़ूल और उपयुक्त विचार था, क्योंकि देसाई से यह फ़ौरी आशा बिलकुल व्यर्थ थी कि वह सही डायलाग बोल सकेगा। एक दफ़ा उसकी ज़बान पर कोई चीज़ जम जाए, तो बड़ी मुश्किल से हटती थी। असल में उसकी स्मरण-शक्ति बिलकुल ज़ीरो थी। उसे छोटे-से-छोटा डायलाग भी याद नहीं रहता था। यदि सैट पर वह पहली बार कोई डायलाग सही अदा कर जाता, तो उसे केवल संयोग समझा जाता था। लेकिन लुत्फ़ यह है कि ग़लत उच्चारण के बावजूद देसाई को इस बात का एहसास नहीं होता था कि उसने डायलाग को किस हद तक—किस ——— ——— ——— बिगाड़ दिया है !

···र उसको पूरी तरह से अपाहिज करके, वह

आम तौर पर ज़ाहिदाना लोगों की प्रशंसा प्राप्त करने की निगाहों से देखा जाता था। उसकी एक-दो हरकतें निस्संदेह मन-बहलाव का साधन होती थीं, मगर जब यह सीमा का उल्लंघन कर जाता, तो सबके दिल में यह ख्वाहिश पैदा होती कि उसके सिर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाएं।

मैं फ़िल्मिस्तान में तीन बरस रहा। इस बीच देसाई ने चार फ़िल्मों में भाग लिया। मुझे याद नहीं कि उसने एक बार भी पहले ही दौर में अपना डायलाग सही ढंग से अदा किया हो। अगर हिसाब लगाया जाए, तो देसाई ने अपने जीवन में लाखों फ़ुट फ़िल्म बरबाद किया होगा।

अशोक ने मुझे बताया कि देसाई की रिटेक्स का रिकार्ड पचहत्तर है, यानी बंबई टॉकीज में उसने एक बार एक डायलाग को चौहत्तर बार ग़लत अदा किया। यह केवल जर्मन डायरेक्टर ही का हौसला था कि वह बहुत देर तक सहन करता रहा। आखिर उसकी सहनशीलता का पैमाना भर गया। सर पीटकर उसने कहा, "मिस्टर देसाई! मुसीबत यह है कि लोग तुम्हें पसंद करते हैं, तुम्हें परदे पर देखते ही हंसना शुरू कर देते हैं, वरना आज मैंने तुम्हें अवश्य उठाकर बाहर फ़ेंक दिया होता!"

और जर्मन डायरेक्टर, फ्रांज़ ऑस्टिन की स्पष्टवादिता का परिणाम यह हुआ कि चौहत्तर 'रिटेक' हुए तथा स्टूडियो के हर कार्यकर्ता को बारी-बारी देसाई को दम-दिलासा देने का कर्तव्य निभाना पड़ा, किंतु कोई बहाना कारगर नहीं होता था। वह एक बार उखड़ जाए, तो कोई दवा या दुआ प्रभावशाली सिद्ध नहीं होती थी। ऐसे समय में चुनांचे यही मुनासिब समझा जाता था कि नतीजा भगवान के हाथ सौंपकर धड़ाधड़ निर्दयतापूर्वक फ़िल्म बरबाद किया जाए और जब ईश्वर और देसाई दोनों की इच्छा एक-सी हो जाए, तो शुक्रिया अदा किया जाए!

अशोक ने लंच के लिए ब्रेक कर दिया। जैसाकि आम दस्तूर था, किसीने देसाई से डायलाग के बारे में बात न की, ताकि जो कुछ हो

चुका है, उसकी याद ताजा न हो। अशोक इधर-उधर की गप्प सुनाता रहा। लंच समाप्त हुआ, शूटिंग फिर आरंभ हुई। अशोक ने उससे पूछा, "क्यों, देसाईसाहब, आपको डायलाग याद है ?"

देसाई ने बड़े आत्म-विश्वास के साथ कहा, "जी हां !"

लाइट्स ऑन हुईं। सीन थर्टी फोर, टेक ट्वैल्व शुरू हुआ। देसाई ने रायफल लहराकर बीरा से कहा, "नीलादेवी,…आप…आप…" और एकदम रुक गया, "आई एम सोरी !"

अशोक का दिल बैठ गया। लेकिन उसने देसाई का दिल रखने के लिए कहा, "कोई बात नहीं, जल्दी कीजिए !"

सीन थर्टी फ़ोर, टेक थरटीन आरंभ हुआ। मगर देसाई ने पेशावर से पेशाब को अलग न किया। जब कुछ अन्य प्रयास भी सफल न हुए, तो मैंने अलग ले जाकर अशोक को यह परामर्श दिया, "दादामणी ! देखो, यों करो, देसाई जब यह डायलाग कहता है, तो वह 'पेशावर का पानी पिया है', यह बात कैमरा के सामने मुंह करके न बोले।"

अशोक समझ गया क्योंकि इस कठिनाई से निकलने का यही एक-मात्र खानदानी नुसखा था, क्योंकि हम बड़ी आसानी से यह डायलाग बाद में ठीक कर सकते हैं।

जब देसाई को यह तरकीब समझाई गई, तो उसे बहुत ठेस पहुंची। उसने हम-सबको विश्वास दिलाने का पूरा प्रयत्न किया कि वह अब गलती नहीं करेगा, मगर पानी सिर से गुज़र चुका था—और वह भी पेशावर का, इसलिए उसकी अनुनय-विनय बिलकुल न सुनी गई, बल्कि उससे कह दिया गया कि जो उसके मन में आए, बोल दे।

देसाई बहुत खिन्न हुआ। परन्तु उसने मुझसे कहा "कोई बात नहीं मंटो ! मैं मुंह दूसरी ओर मोड़ दूंगा, लेकिन आप देखिएगा कि मैं डायलाग बिलकुल करैक्ट बोलूंगा।"

"सीन थर्टी फ़ोर, टेक फोर्टीन !" की आवाज़ आई। देसाई ने बड़े संकल्प के साथ रायफल हवा में लहराई और बीरा से मुखातिब होकर कहा, "नीलादेवी, आप कोई चिंता न कीजिए," यह कहकर वह

एक बार रेसकोर्स पर मैंने दूर से उसकी ओर संकेत किया और अपनी बीवी से कहा, "वहां देसाई है, वह !"

मेरी बीवी ने उसकी ओर देखा और बुरी तरह से हंसना शुरू कर दिया। मैंने पूछा, "इतनी दूर से देखने पर इस कदर हंसने का कारण क्या है ?"

वह मेरे प्रश्न का संतोषजनक उत्तर न दे सकी। केवल यह कहकर वह और भी ज्यादा हंसने लगी, "मालूम नहीं !"

स्वर्गीय देसाई को रेस का बहुत शौक था। अपनी बीवी और बेटी को साथ लाता था। किंतु दस रुपए से अधिक कभी नहीं खेला। उसके कथनानुसार कई जॉकी उसके निकटतम मित्र थे, जो उसको सोलह आने खरी टिप देते थे। यह टिप वह अकसर दूसरों को देता था, इस प्रार्थना के साथ कि वे उसे अपने तक सीमित रखें और किसीको न बताएं। खुद वह किसी और की दी हुई टिप पर खेलता था।

रेसकोर्स पर जब मैंने उसका परिचय अपनी बीवी, सफिया, से कराया, तो उसने एक श्योर यानी निश्चित टिप दी। जब वह न आई, तो उसने मेरी बीवी से विस्मयपूर्वक कहा, "हद हो गई है, यह टिप तो आना ही मांगती थी !" उसने स्वयं एक दूसरे नंबर का घोड़ा खेला था, जो आ गया था। लेकिन इस पर उसने किसी प्रकार का आश्चर्य प्रकट नहीं किया था।

स्वर्गीय देसाई के प्रारंभिक जीवन के बारे में लोगों की जानकारी सीमित है। स्वयं मैं केवल इतना जानता हूं कि वह गुजरात के एक मध्यमवर्गीय घराने का व्यक्ति था। बी० ए० करने के बाद उसने एल-एल० बी० किया। छ:-सात बरस तक बंबई की छोटी अदालतों की खाक छानता रहा। उसकी प्रैक्टिस मामूली थी, किंतु उसका घर-बार चलाने के लिए पर्याप्त थी। लेकिन जब वह मानसिक रोग से पीड़ित हुआ, तो उसकी आर्थिक स्थिति पतली हो गई। एक अरसे तक वह अर्धपागल-सा रहा। इलाज होने पर यह रोग तो दूर हो गया, मगर

[illegible] ने [illegible] काम करने से इनकार कर दिया, क्योंकि [illegible]
[illegible] कहीं [illegible] आए। अब देसाई ग़रीब के लिए बड़ी मु[illegible]
थी कि वह क्या करे, तो क्या करे? अखाड़ा बिल्कुल दिमाग़ी काम
[illegible] और [illegible] या [illegible] पैदा नहीं ह[illegible]
था। कुछ अरसे तक वह इधर-उधर हाथ-पांव मारता रहा। व्यापा[illegible]
[illegible] कोई दिलचस्पी न थी, हालांकि उसकी रगों में ठेठ गुजराती [illegible]
था।

जब हालात बहुत नाज़ुक हो गए, तो उसने सागर मूवीटोन [illegible] देसाई से इच्छा प्रकट की कि उसे स्टूडियो में काम मि[illegible] जाए। वास्तव में उसका उद्देश्य यह था कि उसे ऐक्टिंग का मौक़ा मि[illegible] जाए। [illegible] गुजराती और देसाई था। उसने वी० एच० [illegible] को नौकर रख लिया। उसके कहने पर कुछ डायरेक्टरों ने आज़माइश तौर पर विभिन्न फ़िल्मों में थोड़ा-थोड़ा काम दिया और इस निष्क[illegible] पर पहुंचे कि उसको फिर आज़माना बहुत बुरी बात है।

इस बीच श्री हिमांशु राय बंबई टॉकीज़ स्थापित कर चुके थे, जिसके कई फ़िल्म सफल भी हो चुके थे। इस संस्था के बारे में यह मशहूर था कि शिक्षित लोगों की क़दर करती है। यही सही भी था। देसाई क़िस्मत आज़माई के लिए वहां पहुंचा। दो-तीन चक्कर लगाने और कई सिफ़ारिशी पत्र प्राप्त करने के बाद मिस्टर हिमांशु राय से मिला। हिमांशु राय ने उसकी शक्ल-सूरत तथा उसकी समस्त कमज़ोरियों को दृष्टि में रखते हुए भारतीय स्क्रीन को एक ऐसा ऐक्टर प्रदान किया, जो ऐक्टिंग से बिलकुल अनभिज्ञ और अपरिचित था।

पहले ही फ़िल्म म वी० एच० देसाई फ़िल्म देखनेवालों के आकर्षण का केंद्र बन गया। बंबई टॉकीज़ के स्टाफ़ को शूटिंग के दौरान जो कठिनाइयां पेश आईं, वे बयान से बाहर हैं। सबकी सहन करने की शक्ति जवाब दे दे जाती थी, किंतु वे अपने तजुरबे में जुटे रहे, अंतत: सफल रहे। इस फ़िल्म के बाद देसाई बंबई टॉकीज़ के फ़िल्मों का अभिन्न अंग बन गया। उसके बिना बंबई टॉकीज़ का फ़िल्म अपूर्ण और रूखा-फीका समझा

आता था।

देसाई अपनी सफलता पर प्रसन्न था, मगर उसको आश्चर्य कदापि नहीं था। वह समझता था कि उसकी सफलता उसकी अथक कोशिशों का परिणाम है। मगर खुदा बेहतर जानता है कि इन सारी चीज़ों का उसकी ख्याति और सफलता में तनिक भी दखल नहीं था। यह महज़ क़ुदरत की सितम-ज़रीफ़ी (हास्यपूर्ण मज़ाक) थी कि वह फ़िल्मों का सबसे बड़ा ज़रीफ़ मसखरा बन गया।

मेरी उपस्थिति में उसने फ़िल्मिस्तान के तीन फ़िल्मों में भाग लिया। इन तीन फ़िल्मों के क्रमवार नाम ये हैं 'चल-चल रे नौजवान', 'शिकारी', और 'आठ दिन'। हर फ़िल्म की तैयारी के दौरान हम उसकी ओर से कई बार हताश हुए, मगर अशोक और मुखर्जी चूंकि मुझे बता चुके थे, इसलिए मुझे अपनी शीघ्र घबरा जानेवाली तबीयत को काबू में रखना पड़ा। अन्यथा बहुत संभव था कि 'चल-चल रे नौजवान' की शूटिंग ही के दौरान वह दूसरे जहान को चल पड़ता। वैसे कभी-कभी क्रोध की स्थिति में यह इच्छा बड़ी तेज़ी से पैदा होती थी कि कैमरा उठाकर उसके सिर पर दे मारा जाए, माइक्रोफोन का पूरा बूम उसके गले में ठूंस दिया जाए और सारे बल्ब उतारकर उसकी लाश पर ढेर कर दिए जाएं। किंतु जब इस संकल्प से उसकी ओर देखते, तो यह आततायी मनोवृत्ति हंसी में परिणत हो जाती।

मुझे मालूम नहीं कि मृत्यु ने उसकी जान क्योंकर ली होगी, कि उसको देखते ही हंसी के मारे देवदूतों के पेट में बल पड़ गए। मगर सुना है, फ़रिश्तों के पेट नहीं होता। कुछ भी हो, देसाई की लेते हुए उन्हें निस्सन्देह एक बहुत ही दिलचस्प अनुभव हुआ होगा। जान लेने का ज़िक्र आया, तो मुझे 'शिकारी' का अंतिम सीन याद गया। इसमें हमें देसाई की जान लेनी थी—उसे निर्दया जापानियों हाथों घायल होकर मरना था और मरते समय अपने होनहार शागिर्द ल (अशोक) और उसकी प्रेमिका (वीरा) से मुखातिब होकर यह ा था कि वे उसकी मौत पर शोकग्रस्त न हों, और अपना नेक

ख़त्म किए जाएं। डायलाग की सही अदायगी का सवाल कठिन था। मगर अब यह मुश्किल दरपेश थी कि देसाई को किस अंदाज़ से मारा जाए कि लोग न हंसें। मैंने तो अपना फ़ैसला दे दिया था कि यदि उसको सचमुच ही मार दिया जाए, तो भी लोग हंसेंगे। वे कभी विश्वास ही नहीं करेंगे कि देसाई मर रहा है या मर चुका है। उनके मस्तिष्क में देसाई की मृत्यु की कल्पना आ ही नहीं सकती।

मेरे बस में होता, तो मैंने निश्चित रूप से अंतिम सीन को गोल कर दिया होता, परंतु कठिनाई यह थी कि कहानी का बहाव ही कुछ ऐसा था कि अंतिम सीन में उस चरित्र की मौत आवश्यक थी। कई दिन हम सोचते रहे कि इस कठिनाई का कोई हल मिल जाए, मगर असफल रहे।

डायलाग का सही उच्चारण अब कोई विशेष महत्व नहीं रखता था। जब रिहर्सलें की गईं, तो हम सबने नोट किया कि वह बहुत शर्मनाक तरीके से मरता है। अशोक और वीरा से मुख़ातिब होते हुए वह कुछ इस अंदाज़ से अपने दोनों हाथ हिलाता है, जैसे कोख-भरा खिलौना! उसकी यह हरकत बहुत ही बुरी थी। हमने बहुत कोशिश की कि वह मौन पड़ा रहे और अपने बाज़ुओं को जुंबिश न दे, लेकिन दिमाग़ की तरह उसका शरीर भी उसके क़ाबू से बाहर था।

बड़ी देर के बाद अशोक को एक तरकीब सूझी और वह यह कि जब सीन शुरू हो, तो वीरा और वह दोनों उसके हाथ पकड़ लें। यह तरकीब कारगर साबित हुई। सबने संतोष की सांस ली। लेकिन जब परदे पर फ़िल्म प्रदर्शित हुआ और देसाई की मौत का यह दृश्य आया, तो सारा हॉल कहकहों से गूंज उठा। हमने तत्काल दूसरे शो के लिए उसको कैंची से संक्षिप्त कर दिया, मगर तमाशबीनों की प्रतिक्रिया में कोई फ़र्क नहीं आया। आखिर, थक-हारकर उसको वैसे-का-वैसा रहने दिया।

स्वर्गीय देसाई बेहद कंजूस था। किसी मित्र पर एक दमड़ी भी

सब नहीं करता था। बड़े अरसे के बाद उसने किस्तों पर अशोक से उनकी पुरानी मोटर खरीदी। वह स्वयं चूंकि ड्राइव करना नहीं जानता था, इसलिए एक मुलाज़िम रखना पड़ा। मगर यह मुलाज़िम हर दसवें-पंद्रहवें रोज बदल जाता था। मैंने एक दिन इसका कारण पूछा, तो देसाई गोल कर गया। लेकिन मुझे साउंड रिकार्डिस्ट जगताप ने बताया कि देसाईसाहब एक ड्राइवर रखते हैं। नमूने के तौर पर उसका काम दस बारह रोज देखते हैं, और फिर उसे 'कंडम' करके दूसरा रख लेते हैं। यह क्रम काफी दिनों तक जारी रहा। मगर इसी बीच उसने स्वयं मोटर चलाना सीख लिया।

स्वर्गीय देसाई को दमे की शिकायत बहुत समय से थी। यह मर्ज लाइलाज घोषित कर दिया गया था। किसीके कहने पर उसने हर रोज़ दवा के तौर पर थोड़ी-सी खुश्क भंग खानी आरंभ कर दी थी। अब वह उसका आदी बन गया था। सरदियों में शाम को ब्रांडी का आधा पैग भी पीता था और खूब चहका करता था।

'आठ दिन' में एक सीन ऐसा था कि उसे पानी के टब में बैठना था। मौसम सुहावना था लेकिन उसकी हद से नाज़ुक तबीयत के लिए असहनीय सीमा तक ठंडा था। हमने इसको दृष्टि में रखकर पानी गरम करवा दिया और साथ ही प्रोडक्शन मैनेजर से कह दिया कि ब्रांडी तैयार रखे। जिन लोगों ने यह फिल्म देखा है, उनको यह अवश्य अवश्य याद होगा, जिसमें टीकमलाल (देसाई) सर नरेंद्र के फ्लैट के गुसलखाने में टब में बैठा है। सिर पर बर्फ की थैली है। एक छोटा-सा पंखा चल रहा है और वह शराब के नशे में धुत्त यह कह रहा है, "चारों ओर-सागर-ही सागर है, ऊपर बर्फ का पहाड़ है..." आदि-आदि।

शूटिंग समाप्त हुई, तो जल्दी-जल्दी देसाई के कपड़े बदलवाए गए। उसके बदन को अच्छी तरह खुश्क किया गया। फिर उसको एक पैग ब्रांडी का दिया गया।

यह उसके कंठ से नीचे उतरी, तो उसने बहकना आरंभ कर दिया। इतनी थोड़ी मात्रा ने ही उसे पूरा शराबी बना दिया। कमरे में केवल

में उपस्थित था, चुनांचे वह मुझे अपने सारे कारनामों की दा
सुनाने लगा। कचहरियों में वह कैसे मुकदमे लड़ता था और किस ...
दार और ज़ोरदार तरीके पर अपने मुवक्किलों की वकालत करता था

संभवतः 'आठ-दिन' फिल्माने का ही ज़माना था कि पंजाब सरकार
ने धारा २९२ के अंतर्गत मेरे वारंट जारी किए। मेरे अफ़साने 'बू' पर
अश्लीलता का आरोप था। इसकी चर्चा देसाई से हुई, तो उसने अपनी
क़ानूनी जानकारी बघारनी आरंभ कर दी। मुझे यकायक एक दिलचस्प
शरारत सूझी। वह यह कि अपने मुकद्दमे में पैरवी के लिए देसाई को
चुनूं। अदालत में निस्संदेह एक हंगामा पैदा हो जाता, जब वह मेरी
से पेश होता। मैंने इसका उल्लेख मुकर्जी से किया। वह फौरन मान ग...

गवाहों की लिस्ट बनाई, तो मैंने इंडियन चार्ली, नूर मोहम्मद, को
भी उसमें शामिल किया। चार्ली और देसाई सारे लाहौर को अदालत
के कमरे में खींचने के लिए काफ़ी थे। मैं इसकी कल्पना करता, तो मेरे
सारे शरीर में हंसी का चश्मा फूटने लगता। मगर अफ़सोस कि शूटिंग
की कठिनाइयों के कारण मेरा यह स्वप्न पूरा न हुआ।

देसाई को अफ़सोस था कि उसको अपनी क़ानूनी योग्यता प्रदर्शित
करने का अवसर न मिला। कमबख़्त की निगाहों से यह बिलकुल ओझल
था कि मुझे उसकी योग्यता में कोई दिलचस्पी नहीं थी। मैं तो यह
चाहता था कि जब वह अदालत में पेश हो, तो बार-बार बौखलाए
जो-कुछ कहना चाहता है, बार-बार भूले; पेशावर के पानी को
पेशाब बनाए और इतनी रिटेक कराए कि सबकी तबीयत साफ़ हो जा...

देसाई मर चुका है। जीवन में केवल एक बार उसने रिटेक होने
नहीं दिया। रिहर्सल किए बगैर उसने भगवान के आदेश की तामील की
और लोगों को और हंसाए बिना मौत की गोद में चला गया! ●